# धर्मायण

मूल्य : 45 रुपये
अंक 131
ज्येष्ठ,
2080 वि. सं.

( धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका )

## वनस्पति-उपासना विशेषांक

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।4।।

महावीर मन्दिर में जानकी नवमी के अवसर पर अष्टयाम संकीर्तन का आयोजन

# धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

## आलेख –सूची


| | | |
|---|---|---|
| 1. **वनस्पतयः शान्तिः** | (सम्पादकीय आलेख) | 3 |
| 2. **वनस्पतियों में दैविक दिव्यता** | - विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक | 6 |
| 3. **उत्कलीय परम्परा में वृक्षपूजा** | - डा. ममता मिश्र 'दाश' | 15 |
| 4. **वनस्पति और हमारे लोकपर्व** | - श्रीमती शारदा नरेन्द्र मेहता | 21 |
| 5. **पर्यावरण पर भारतीय चिंतन और वृक्षपूजन** | - डा. श्रीकृष्ण 'जुगनू' | 26 |
| 6. **वृक्ष एवं हिन्दी साहित्य के कतिपय सन्दर्भ** | - डा. राजेन्द्र राज | 35 |
| 7. **निसर्ग के सानिध्य में** | - डा.अजय शुक्ला | 38 |
| 8 **'भास्कराब्द' के प्रवर्तक कामरूप के कुमार भास्कर वर्मन** | - श्री दिनकर कुमार | 42 |
| 9 **श्रीहनुमज्जन्मभूमि-विमर्श** | - स्वामी गोविन्दानन्द सरस्वती | 46 |
| 10. **भारत के प्रसिद्ध वट-वृक्ष-स्थल** | - श्री रवि संगम | 50 |
| 11. **लङ्केश रावण में भी बसे थे प्रभु श्रीराम (भेंट-वार्ता)** | - डा. विनोद बब्बर | 61 |
| 12. **कविताएँ** | - श्री घनश्याम दास 'हंस', | 66 |
| | -डा.कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव | 67 |
| | -श्री गौरीशंकर वैश्य विनम्र | 68 |
| 13. **रामचरितमानस की रामकथा-** | आचार्य सीताराम चतुर्वेदी | 69 |
| 14. **19वीं शती की विवाह-विधि** | (रीतिरत्नाकर से संकलित) | 73 |
| 15 **अन्य स्थायी स्तम्भ** | | 77 |


पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।


धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

**अंक 131**
ज्येष्ठ, 2080 वि. सं.
6 मई-4जून, 2023ई.



**सम्पादक**
**भवनाथ झा**

**पत्राचार :**
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना–800001, बिहार
फोन: 0612–2223798
मोबाइल: 9334468400

**E–mail:**
dharmayanhindi@gmail.com

**Website:**
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

**Whatsapp:**
9334468400


**मूल्य : 45 रुपये**

# पाठकीय प्रतिक्रिया

## (अंक संख्या 130, वैशाख, 2080 वि.सं.

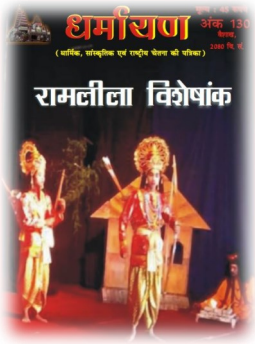


आदरणीय श्री भवनाथ जी, राम-लीला अंक में अच्छी सामग्री जुटाई गई है। संपादकीय शोध अध्ययन का सुंदर रूप है। आपने अनेक दिशाओं में संकेत किया है। आदरणीय ममताजी दाश ने गंभीर लिखा है और नागेंद्र कुमार जी ने भी विषय के साथ न्याय किया है। अभी अंक पढ़ रहा हूँ।

*डा. श्रीकृष्ण 'जुगनू'*

धर्मायण की अंक संख्या 130 रामलीला अंक को आद्योपान्त पढ़ गया। एक विषय पर इतनी अधिक सामग्री देखकर आश्चर्यचकित हूँ। निःसन्देह धर्मायण के सभी लेखक उच्च कोटि के विद्वान् हैं। सम्पादकीय आलेख में बहुत सारी नयी सूचनाएँ मिलीं। साथ ही, संस्कृत के नाटकों के प्रथम मंचन की खोज विषय में शोध-संकेत मिले। इस प्रकार के शोध यदि हों तो प्राचीन काल के प्रचलित उत्सवों पर प्रकाश पड़ेगा। हनुमन्नाटक की रचना तथा विविध पाठों के विषय में पर्याप्त सूचनाएँ मिलीं। इस सम्पूर्ण अंक में रामलीला के उदात्त स्वरूप तथा लोकसंग्रह का माध्यम बनने की क्षमता पर पर्याप्त विमर्श प्रस्तुत है। निश्चय इलैक्ट्रॉनिक क्रान्ति के कारण आज यह परम्परा क्षीण हो गयी है, जिसके कारण हम 'लोक' से दूर होते जा रहे हैं। श्रीमती रंजू मिश्रा का आलेख एक पुराने दिनों की याद दिलाता है, जब रामलीला के पात्र स्वयं नैष्ठिक होकर उपासना के समान अपनी भूमिका निभाते थे। वे धन संचय के लिए नहीं, बल्कि कीर्तन को सजीव बनाने के लिए विभिन्न भूमिका में उतरते थे।

सन्त सरयूदास का ऐतिहासिक आलेख ज्ञानवर्धक लगा। उन्होंने रामलीला के सिद्धान्त को बहुत आस्था के साथ वर्णित किया है। सभी लेखकों को बधाई एवं सम्पादक को धन्यवाद।

अंकों के मुद्रण कार्य की व्यवस्था होनी चाहिए। ये सनातन धर्म के क्षेत्र में मार्गदर्शक होंगे

*आर. के. भारद्वाज*
*राहुल नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, भोपाल।*

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.–+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अग्रिम अंक **योग-विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। एक ओर योग दर्शन है, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा के संयोग का योग कहा गया है। इस पर पतंजलि का योगसूत्र प्रामाणिक ग्रन्थ है। दूसरी ओर आगम के चार पादों– ज्ञान, योग, क्रिया एवं चर्या में एक योग है, जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के आसनों का विवेचन किया गया है तथा साधना के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए विविध प्रकार के उपयोग बताये गये हैं। इस प्रकार, आगमीय योगपाद का परवर्ती विकास व्यायाम आदि हैं। विभिन्न आगमों के सन्दर्भ में योग पर विवेचन अपेक्षित होगा।

# वनस्पतयः शान्तिः

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

आज जब विकास के नाम पर, बढ़ती जनसंख्या के कारण बढ़ते आवासीय क्षेत्र के नाम पर वनों को काटकर सड़कें चौड़ी की जातीं हैं, बस्तियाँ बसायी जाती हैं तो कई जगहों पर गिरे-कटे विशाल वटवृक्ष, पीपल आदि की जड़ें मन को कचोट लेतीं हैं। हमें तब याद आता है कि यह बूढ़ा बरगद आसपास के इतिहास का एक गवाह था, जो सदा के लिए मिट गया। विज्ञान कहता है कि वृक्ष है तो मानव है अतः मरुस्थल में मानव सभ्यता की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव के अस्तित्व के लिए वृक्षों का होना अनिवार्य है और शायद इसीलिए सनातन धर्म में वृक्षों-वनस्पतियों में देवत्व की अवधारणा है। यह वनस्पति जगत् के लिए हमारी कृतज्ञता का ज्ञापन है।

सनातन धर्म में देववृक्षों की अवधारणा है। पीपल, बड़गद, पाकड़, पलाश, गूलर, बिल्व, शमी, आँवला, अगस्त्य आदि को काटने की मनाही है। बाँस विज्ञान की दृष्टि में भलें घास जाति का पौधा हो, पर हमारी अवधारणा उसे 'वंश' से अन्वित करती है। 'सरोज-सुन्दर' नामक धर्मशास्त्रीय पुस्तिका कहती है कि बाँस कभी बेचना नहीं चाहिए। किसी को आवश्यकता हो तो आप उसे विना दाम लिए उपलब्ध करा दें। हम सुनते आये हैं कि इस वृक्ष पर यक्ष का वास है, इसपर देवता रहते हैं। गाँवों में ब्रह्मस्थान पर पीपल, बड़गद की पूजा होती है। प्राचीन काल के सन्तों के नाम पर भी बहुत-सारे वृक्ष होते हैं और मान्यता होती है कि इसी पेड़ के नीचे उसने तपस्या कर सिद्धि पायी थी। सच्चाई जो हो, किन्तु इन अवधारणाओं के कारण हम उस वृक्ष की रक्षा करते हैं, जो हमारी आस्था के केन्द्र होते हैं।

पद्म-पुराण सृष्टिखण्ड अध्याय 40 में पार्वती के शब्दों में कहा गया है कि जिस गाँव में पेयजल का अभाव हो वहाँ एक कुँआ खुदबाने से जल के प्रत्येक बिन्दु की संख्या के बराबर वर्षों तक वह व्यक्ति स्वर्ग में वास करता है। यदि वह एक वापी यानी कुण्ड बनबाता है तो दश कुआँ खुदबाने का फल मिलेगा। यदि एक बड़ा तालाब खुदबाता है तो दश कुण्ड खुदबाने का फल होगा। वही यदि एक कन्या का वह भरण-पोषण करता है तो दस तालाब खुदबाने का फल होगा। और दस कन्या के भरण-पोषण का फल उसे एक वृक्ष लगाने से होगा। फलश्रुति कहने की यह पुराण की अपनी शैली है जो केवल अर्थवाद है यानी इस दिशा में आकृष्ट कराने के लिए की गयी प्ररोचना है। हमें देखना चाहिए कि आखिर पुराणकार का उद्देश्य क्या है? यहाँ निश्चित रूप से पुराणकार कहते हैं कि हमें वृक्ष लगाना चाहिए।

**पार्वत्युवाच।**
**एकं निरुदके ग्रामे यः कूपं कारयेद् बुधः।**
**बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य स वसेद् वत्सरं दिवि॥463॥**
**दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।**
**दशह्रदसमा कन्या दशकन्यासमो द्रुमः॥**
**एषा वै शुभमर्यादा नियता लोकभाविनी॥**

आवासीय परिसर में कम से कम एक वृक्ष लगाना चाहिए। भविष्य पुराण, मध्यपर्व, तृतीय भाग, तृतीय अध्याय स्पष्ट रूप से विधान करता है कि घर के समीप क्षुद्राराम यानी छोटा-सा भी बगीचा होना चाहिए। उसमें कम से कम एक वृक्ष होना चाहिए। यानी एक घर के परिसर में कम से कम एक वृक्ष की अवधारणा हमारी संस्कृति में है। उस वृक्ष को लगाकर उसकी जड़ में धर्म, पृथ्वी, कुबेर, दिक्पाल तथा यक्ष का आवाहन कर उनकी पूजा करनी चाहिए।

इसीका अगला अध्याय पीपल वृक्ष लगाने का पूरा विधान प्रस्तुत करता है। इसे अश्वत्थप्रतिष्ठा कहा गया है। इसका यज्ञ-विधान भी कुण्ड तथा तालाब के समान कहा गया है।

यहीं पर सप्तम अध्याय तो पूरा का पूरा एक वृक्ष लगाने की विधि का वर्णन करता है। वृक्ष लगाकर उसके पश्चिम भाग में कलश की स्थापना करनी चाहिए। वहाँ ब्रह्मा, धर्मराज, पृष्वी, कुबेर, दिक्पाल, यक्ष आदि का आवाहन कर उनकी पूजा करनी चाहिए। भविष्य पुराण में इस स्थल पर आगे के अध्यायों में पीपल, वट, बिल्व, सुपारी, आम आदि वृक्षों के साथ आवासीय परिसर के लिए वास्तु-विधान किया गया है।

मूल वस्तु है वृक्ष के प्रति आस्था का विधान और वृक्षों के साथ आवासीय परिसर का सम्बन्ध-प्रदर्शन। इसी क्रम में एख पारिभाषिक शब्द पंचाम्र का उल्लेख आता है। पञ्चाम्र शब्द संस्कृत का रूढ शब्द है— **अमन्ति रसानि प्राप्नुवन्तीति। अमगत्यादिषु+ "अमितम्योर्दीर्धश्च।" उणा0 2। 16। अवलम्बः रक् दीर्घश्चोपधायाः इति आम्रा वृक्षाः। पञ्चानाम् आम्राणामश्वत्थादिवृक्षाणां समाहारः।**

वैदिक परम्परा में पञ्चाम्र वृक्षों का रोपण अनन्त फलदायी होता है

**अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजातीः।**
**द्वे द्वे तथा दाडिममातुलङ्गे पञ्चाम्रवापी नरकं न याति॥ इति वराहपुराणम्॥**
**अपि च।**
**"अश्वत्थ एकः पिचुमर्द एको द्वौ चम्पकौ त्रीणि च केशराणि।**
**सप्ताथ ताला नव नारिकेलाः पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति॥" इति तिथितत्त्वम्॥**

अर्थात् पीपल का एक वृक्ष, नीम का एक वृक्ष, वट का एक वृक्ष, चम्पा के दो वृक्ष, केसर के तीन वृक्ष, ताड के सात वृक्ष तथा नारियल के नौ वृक्ष जो लगाता है वह नरक नहीं जाता है।

वृक्ष का उपयोग हम विविध कार्यों में करते हैं। इससे देवविग्रह बनाये जाते हैं, इन्द्रध्वज स्थापित होता है, यज्ञ के लिए यूप बनते हैं। इन कार्यों के लिए जीवित वृक्षों को काटना पड़ता है। पुराण हमें निर्देश देता है कि हम जीवित वृक्षों को काटते हैं तो उससे पूर्व हमें वृक्ष की उपासना करनी होगी। देवीपुराण (देवीभागवत के पृथक् 128 अध्यायों वाला उपपुराण) के बारहवें अध्याय में इन्द्रध्वज के वृक्ष को काटने की विधि है कि वन में जाकर पहले वृक्ष का चयन करें। वहाँ सन्ध्याकाल में उस वृक्ष की पूजा कर उससे प्रार्थना करें कि हे वृक्षदेव हे वृक्ष यह राजा तुम्हारी

अर्चना कर रहा है। ध्वज हेतु आप इस वृक्ष को छोड़कर दूसरे स्थल पर चले जायें।

सूर्य की प्रतिमा बनाने के लिए साम्बपुराण भी इसी प्रकार की विधि का वर्णन करता है। स्पष्ट है कि सनातन धर्म में वृक्षों में देवत्व का भाव रहा है। अवधारणा है कि वृक्ष के प्रत्येक अंगों में देव वास करते हैं। अतः शारदीय नवरात्र में देवी पूजा के क्रम में षष्ठी तिथि को बिल्ववृक्ष की पूजा कर इसके एक फल में देवी का निवास मानकर बिल्वाभिमन्त्रण करते हैं, साथ ही नवपत्रिका की पूजा के साथ सप्तमी के दिन से देवी का दर्शन आरम्भ करते हैं।

धर्मायण के इस अंक की योजना के पीछे यही अवधारणा रही है कि हमारी भारतीय परम्परा मानव जीवन हेतु वृक्षों के महत्त्व को प्राचीन काल से जानती रही है और उन्हें हमारे लिए हितैषी मानकर उनकी उपासना करती रही है।

***

# लेखकों से निवेदन

**'धर्मायण' का अग्रिम अंक** 'धर्मायण' का अग्रिम अंक **योग-विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। एक ओर योग दर्शन है, जिसमें जीवात्मा और परमात्मा के संयोग का योग कहा गया है। इस पर पतंजलि का योगसूत्र प्रामाणिक ग्रन्थ है। दूसरी ओर आगम के चार पादों— ज्ञान, योग, क्रिया एवं चर्या में एक योग है, जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के आसनों का विवेचन किया गया है तथा साधना के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए विविध प्रकार के उपयोग बताये गये हैं। इस प्रकार, आगमीय योगपाद का परवर्ती विकास व्यायाम आदि हैं। विभिन्न आगमों के सन्दर्भ में योग पर विवेचन अपेक्षित होगा। इसमें अष्टाङ्गयोग, विभिन्न प्रकार के आसन, योग-विषयक कतिपय प्रामाणिक ग्रन्थों का परिचय आदि पर विचार किया जायेगा। स्थिति यह है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थ एक ओर उपेक्षित हो गये हैं और वर्तमान में योगाचार्यगण अपने अनुभव के आधार पर इसके नित्य नवीन रूप को बाजार में उतार रहे हैं। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक आगम के ग्रन्थ कुछ अध्यायों में योग का सांगोपांग वर्णन करते हैं। इस प्रकार, वर्तमान में योग के वास्तविक स्वरूप में विकार उत्पन्न हो रहे हैं।

विद्वानों से निवेदन है कि आगम की विभिन्न शाखाओं में वर्णित जो योगपाद है उसका सम्बन्ध योगसूत्र से जोड़ते हुए भारत की आर्ष परम्परा को पाठकों तक पहुँचायें ताकि उनके बीच अंतः सम्बन्ध को बोध हो सके।

***

# वनस्पतियों में दैविक दिव्यता

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक

**भारतीय अवधारणा के अनुसार वनस्पति जगत् भी ईश्वर की 16 कलाओं में से एक कला से सम्पन्न है, अतः उनमें भी जीवन का संचार है। वनस्पति के इस जीवन से हमारे ऋषि-मुनि परिचित रहे हैं। महाभारत में विशुद्ध वैज्ञानिक शैली में यह सिद्ध किया गया है कि वनस्पति जगत् में भी जीवन हैं, चेतना है- वे भी देखते हैं, सुनते हैं, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। इनमें से बहुत वृक्ष ऐसे माने गये हैं जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध ईश्वर के साथ कहा गया है। आम के पौधे को सींचने से पितरों की तृप्ति होती है- आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ताः एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा- प्रचलित है। शनिदेव की कृपादृष्टि के लिए पीपल के नीचे तिल का तेल चढ़ाते हैं, तिल के तेल का दीपक जलाते हैं। इसी प्रकार सनातन धर्म में ऐसे अनेक वृक्ष हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध किसी न किसी देव से माना गया है। ऐसे पवित्र वृक्षों पर यहाँ विशद विवेचन प्रस्तुत है।**

परमात्मा द्वारा निर्मित इस जड़-चेतनात्मक संसार में परमात्मा की षोडश कलात्मक अभिव्यक्ति व्याप्त है। चेतन सृष्टि में उद्भिज्ज भी ईश्वरीय रचना है। अचर या स्थावरों में उद्भिज्ज की गणना होती है। चौरासी लाख योनियों में 30 लाख की संख्या में स्थावर हैं। सामान्यतः उद्भिज्जों में पाँच जातियाँ होती हैं— वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली एवं त्वक्सार।[1]

## मात्र एक कला से सम्पन्न

जीव जितने मात्र में अपनी योनि के अनुसार समुन्नत होगा, उतनी ही मात्रा में परमात्मा की कला उस जीव विशेष का आश्रय लेकर एवं इसे माध्यम रूप में जानकर विकसित होती है। इसलिए अन्नमयकोश ही उद्भिज्ज योनि में परमात्मा की षोडश कलाओं में से एक कला समाहित रहती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि परमात्मा की मात्र एक कला ही उद्भिज्जों को आशीष रूप में प्रदान हुई है। इसी क्रम से परवर्ती जीव में यानि स्वेदज में दो कला, अण्डज में तीन कला, जरायुज के अन्तर्गत पशु-योनि में चार कला तथा मनुष्यों में पाँच कलाओं का विकास होता है— यह पाँच कला मात्र साधारण मनुष्यों के लिये कही गयी है। जिन मनुष्यों में पाँच से आठ कलाओं का विकास होता है, वे साधारण कोटि के न होकर विभूति की कोटि में

1 महाभारत : भीष्मपर्व, 4.14- उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः। वृक्षगुल्मलता-वल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः॥

परिगणित होते हैं अर्थात् वे दिव्य उपादानों से सम्पन्न एवं आवेष्ठित होते है। उसके बाद नौ कला से लेकर पन्द्रह कला का विकास अलौकिक होता है, अतः ऐसे कलाओं से सम्पन्न विभूति अवतार अथवा अंशावतार आदि कोटि में गिने जाते हैं। नौ से लेकर पन्द्रह कला तक का विकास अंशावतार कहलाता है तथा षोडश कलाओं का केन्द्र पूर्णावतार कहलाता है। इसमें वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न और दिव्य होते हैं। जैमिनि-उपनिषद् में कहा गया है— **'षोडशकलं वै ब्रह्म।**[2] पूर्ण ब्रह्म की षोडश कलाएँ होती हैं। प्रश्नोपनिषद् में इसपर विस्तृत सन्दर्भ देखे जा सकते हैं।[3] इसप्रकार जैसे-जैसे कलाओं का विकास होता जाता है, चेतन की दिव्यता बढ़ती ही चली जाती है।

## पञ्चभूत से सम्पन्न

यहाँ मात्र वनस्पतियों की चर्चा ही अपेक्षित है, जिन्हें मात्र एक कला से सम्पन्न कहा गया है। इन्हीं एक कला के धारण करने से इनकी इन्द्रियाँ कर्मगत होती है— जैसे श्वसन, पोषण, पाचन, वृद्धि आदि जैसे गुणधर्म को धारण करना। महाभारत[4] में वनस्पति-विज्ञान की एक झलक महर्षि भरद्वाज एवं महर्षि भृगु के एक संवाद के रूप में वर्णित है, जिसमें महर्षि भृगु कहते हैं —

**ऊष्मतो म्लायते पर्णः त्वक्फलम् पुष्पमेव च।**
**म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते॥**

गर्मी से पत्ते मुरझा जाते हैं, पेड़ के छाल, फल और फूल मलिन हो जाते, झड़ जाते हैं अतः वृक्ष में स्पर्श गुण है।

**वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।**
**श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥**

हवा, आग, बिजली की कड़क का आबाज से फल, फूल बिखर जाते हैं क्योंकि वृक्ष कान से शब्द का ग्रहण करते हैं अतः वृक्षों में सुनने की भी शक्ति है।

**वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।**
**न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात् पश्यन्ति पादपाः॥**

कोई लता दूसर वृक्ष से लिपट जाती है, वह चारों ओर जाती है, जो देख नहीं सकती वह रास्ता कैसे खोज लेगी, अतः वृक्ष में देखने की भी क्षमता है।

**पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपेश्च विविधैरपि।**
**अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः॥**

अच्छे और बुरे अनेक प्रकार के गंधवाले धूप लगाने से वृक्षों के रोग दूर होते हैं और वे पूल देने लगते हैं, अतः वृक्ष में सूँघने की भी क्षमता है।

**पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।**
**व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे॥**

अपनी जड़ से पौधे जल ग्रहण करते हैं, उन्हें अनेक प्रकार के रोग आ घेरते हैं, फिर उनकी चिकित्सा जड़ में औषधियाँ डालकर की जाती है, अतः वृक्षों में जीभ भी होते हैं दिससे वे स्वाद ग्रहण करते हैं।

**वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत्।**
**तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः॥**

जैसे कोई मनुष्य कमल की नाल लगाकर जल ऊपर की ओर खींचता है, उसी प्रकार वृक्ष भी वायु की सहायता से अपना जड़ों से जल ऊपर तक खींचता है।

**सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।**
**जीवं पश्यामि वृक्षनामचैतन्यं न विद्यते॥**

वृक्ष सुख एवं दुः दोनों का अनुभव करते हैं, टहनी कट जाने पर वहाँ फिर से कोपल निकल आते हैं अतः हम देखते हैं कि वृक्षों में भी जीव है, वह अचेतन नहीं है।

2 जैमिनि-उपनिषद् 3/28/8
3 प्रश्नोपनिषद्- 6/1-4- षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद...
4 महाभारत : शान्तिपर्व- 184/11-19

**तेन तज्जलमादत्तं जरयत्यग्निमारुतौ।**
**आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते॥**

वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खींचता है, उसे अग्नि एवं वायु पचाते हैं और इस आहार लेने के कारण इनमें स्निग्धता आती है और वे बढ़ते जाते हैं।

**जङ्गमानां च सर्वेषां शरीरे पञ्च धातवः।**
**प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यैः शरीरं विचेष्टते॥**

सभी जंगम प्राणियों के शरीर में पांच धातुएँ होतीं हैं, किन्तु वहाँ उनके स्वरूप में भेद होता है। इन पाँच धातुओं के सहयोगसे ही शरीर गतिशील तथा क्रियाशील रहते हैं।

इस सन्दर्भ में भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बोस का नाम लेना प्रासंगिक होगा, जिन्होंने स्वनिर्मित क्रिस्कोग्राफ की सहायता से यह प्रमाणित किया था कि पेड़-पौधे भी निद्रा, भोजन, खुशी, डर, प्रकाश-अन्धकार आदि के प्रभाव से वंचित नहीं।

उपनिषदों के अन्दर सूक्ष्म अवलोकन की वेधशाला अति विशिष्ट होती है। इसमें कहा गया है— पञ्चभूतों के बनने (उत्पत्ति होने) के बाद— **"पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।"**[5] 'पृथ्वी से समस्त वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई, वनस्पतियों से अन्न, अन्न से ही पुरुष शरीर उत्पन्न हुआ, यह पुरुष शरीर निश्चय ही अन्नरसमय है।' यह सृष्टि पञ्चभूतों के मिश्रण से बनी है, इसलिये इस मिश्रण-क्रिया को वेदान्त में 'पञ्चीकरण' कहा गया है। पञ्चीकरण का अर्थ हुआ— 'पञ्चमहाभूतों में से प्रत्येक न्यूनाधिक भाग लेकर उस सबों के मिश्रण से किसी नए पदार्थ का बनना।' ये समस्त क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ ईश्वर-प्रदत्त मात्र इन्हीं एक कला का परिणाम है।

## दिव्यता के धारक वृक्ष

भारतीय परम्परा में वनस्पतियों को प्राणदायिनी कहा गया है। समस्त संसार के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व इन्हीं पर है। रामायणप्रोक्त संजीवनी नाम ओषधि का चमत्कार आज भी एक उदाहरण है। आयुर्वेद का मूलाधार वनस्पति ही है। इन्हीं सब कारणों से कुछ पेड़-पौधों की उत्पत्ति एवं दैवीय दिव्यता का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है—

### अश्वत्थ—

प्रचलित नाम— पीपल, वानस्पतिक नाम— Ficus religiosa, कुल— मोरैसी। श्रीमद्भागवत[6] में वर्णित है कि श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के समय वे एक छोटे से पीपल वृक्ष का सहारा लिये हुए बायीं जँघा पर दायाँ चरणकमल रख कर बैठे थे। भगवान् ने अश्वत्थ को अपनी विभूति कहा है— **"अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां"**[7] एवं **"वनस्पतीनामश्वत्थम्"**।[8]

कठोपनिषद् में— **'उर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातन।'**[9] ऊपर की ओर मूल वाला, नीचे की ओर शाखा वाला, यह प्रत्यक्ष जगत् सनातन पीपल का ही एक वृक्ष है। अश्वत्थ वृक्ष श्रीविष्णु का मूर्तिमान स्वरूप है। इसकी जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में हरि और फलों में सभी देवताओं से युक्त अच्युत निवास करते हैं।[10]

वामन-पुराण[11] के अनुसार भगवान् सूर्य से पीपल वृक्ष की उत्पत्ति हुई है। शनिवार को अश्वत्थ वृक्ष के पास दीपदान, तैलदान एवं पूजन करने से शनि की कृपा बनी रहती है, इसके पीछे हनुमच्चरित की ही प्रधानता है। भगवान् बुद्ध को सम्बोधि की प्राप्ति इसी

5 तैत्तिरीय उपनिषत् : 2.1
6 श्रीमद्भागवत : 3.4.8- वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम्। अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम्॥ 8॥
7 गीता-10/26 8 श्रीमद्भा०-11/16/21
9 कठोपनिषद् (2/3/1) 10 स्कन्दपुराण-247/41-44 11 वामनपुराण 17/8

वृक्ष की छाँव तले हुई थी। प्राणवायु का सर्वाधिक निःस्सारण करने वाली अश्वत्थवृक्ष की उपयोगिता धार्मिक, आयुर्वेदिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

### बरगद–

प्रचलित नाम–अक्षयवट / वट, वानस्पतिक नाम – Ficus Bengalensis, कुल– मोरैसी। इसे देववृक्ष भी कहा जाता है। इसी वृक्ष के पत्रपुटक पर प्रलयकाल के अन्तिम चरण में लीलाधारी भगवान् श्रीकृष्ण अपने बालरूप में लेटे हुए थे, इसी अवस्था में मार्कण्डेय ऋषि को इन्होंने दर्शन दिया था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने संगम (प्रयागराज) स्थित अक्षयवट को तीर्थराज का छत्र कहा है–

**संगमु सिंहासनु सुठि सोहा।**
**छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥**[12]

पञ्चवटी में ही श्रीराम, सीताजी एवं भ्राता लक्ष्मणजी अपने वनवास काल में कुछ दिनों तक विश्राम किया था। पाँच वटों से युक्त स्थान को 'पञ्चवटी' कहा जाता है,(कहीं-कहीं पीपल, बरगद, बेल, अशोक और आँवला या हरड़ से युक्त स्थान को भी पञ्चवटी कहा जाता है।) ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या को पतिव्रता नारियों के विशेष दिन कहा गया है। इसी वटवृक्ष के नीचे सावित्री (मद्रदेश के राजा अश्वपति की सन्तान) ने अपने अल्पायु पति सत्यवान (शाल्वदेश राजा द्युमत्सेन के पुत्र) की मृत्यु होने पर यमराज के मृत्यु-पाश से अपने पति को मुक्त कराया था, साथ ही अपने एवं अपने परिवार के हित-कामना के लिये पाँच वरदान भी प्राप्त किये थे। इसी के स्मरणस्वरूप इस दिन विशेष पर समस्त मनोरथ की पूर्ति हेतु वैधव्यनिवारण एवं सौभाग्यवती बने रहने के लिये 'वटसावित्री' का व्रत रखकर अपनी अभिलाषित कामना किया करती हैं।

### तुलसी–

प्रचलित नाम–वृन्दा/तुलसी, वानस्पतिक नाम– Ocimum tenuiflorum, कुल–लेबिएटी। वैष्णवों का परमप्रिय, परमाराध्य पौधा है। कार्तिक शुक्ल एकादशी को तुलसी विवाह बड़े ही धूमधाम से माने की परम्परा है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार तुलसी धर्मध्वज एवं माधुरी की सन्तान है, जिसका प्राकट्य कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था।[13]

किशोरावस्था आने पर तुलसी ने बदरीवन में जाकर दुर्घर्ष तपस्या कर चतुर्मुख ब्रह्माजी को प्रसन्न करते हुए कहा– पूर्वजन्म में मैं तुलसी नाम वाली गोपी थी, मेरा निवास गोलोक में था। मुझे श्रीकृष्ण की अनुचरी, प्रेयसी सखी होने का सौभाग्य मिला, लेकिन रास की अधिष्ठात्री देवी राधा ने रोषवश मुझे शाप दे दिया कि 'तुम मानव योनि में उत्पन्न होओ'। तब गोविन्द ने मुझसे कहा तुम भारतवर्ष में जाकर तपस्या करो, कालान्तर में चतुर्भुज विष्णु को तुम पतिरूप में प्राप्त करोगी। उससमय श्रीकृष्ण अंग से उत्पन्न सुदामा भी शापवश 'शंखचूड़' नामक दानव होकर उत्पन्न हुआ। यही दानव तुलसी से विवाहोपरान्त उसके पतिव्रतप्रभाव के कारण उसका अवध्य पति हुआ। लेकिन श्रीविष्णु की युक्ति से यह दानव मारा गया, फलस्वरूप तुलसी ने श्रीहरि को कहा आप तो अपने भक्त का ही छल से वध कर डाला, कैसे पाषाण हृदय के आप हैं! अतः आप पाषण हो जायें। तदन्तर श्रीहरि

12 रामचरितमानस : 2/105/4)।

13 ब्रह्मवैवर्तपुराणम् : प्रकृति खण्ड, अध्यायः 15- नारायण उवाच॥ धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता॥ नृपेण सार्द्धं सा रागाद्रेमे वै गन्धमादने॥ 1॥... कार्तिकीपूर्णिमायां च सितवारे च पद्मजे॥ सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम्॥ 8॥

ने कहा— मैं तो पाषण हो ही जाउँगा, लेकिन तुम मेरे साथ दिव्यदेह धारण कर नदी रूप में परिणत होकर 'गण्डकी' नाम से प्रसिद्ध होओगी और मैं सदैव गण्डकी नदी के तट पर पाषण (शालग्राम) होकर वहीं विराजूँगा। इसीप्रकार तुलसी की अभिलाषित कामनाओं की पूर्ति हुई और यह 'विष्णुप्रिया' तुलसी के नाम से पूजित हुई। कहा जाता है शंखचूड़ की हड्डियों से शंख की उत्पत्ति हुई, अतः शंख, तुलसी और शालग्राम जो साथ-साथ रखता है, वह श्रीहरि का आशीष पाता है। तुलसी की महिमा है कि इस पत्र के साथ भोग लगाने पर ही ठाकुरजी भोजन करते हैं, अन्यथा नहीं। तुलसीपत्र और गंगाजल के बासी होने पर भी इसका उपयोग किया जाता है।

### आमला—

प्रचलित नाम—धात्री / आँवला, वानस्पतिक नाम — Emblica officinalis, कुल— युफोर्बिएसी। स्कन्दपुराण[14] में कहा गया है आमले का वृक्ष सभी पापों का नाश करनेवाला होता है। पूर्वकाल में जब सारा जगत् एकार्णव में निमग्न हो गया था, उस समय ब्रह्माजी परब्रह्म का जप कर रहे थे। तभी भगवद्दर्शन के अनुरागवश उनके नेत्रों से जल निकलने लगा। इस प्रेमाश्रु की बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इसीसे आँवले का महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ। सभी वृक्षों में सबसे पहले आँवला ही प्रकट हुआ, इसलिये इसे 'आदिरोह' कहा गया। इसके बाद ही समस्त प्रजाओं की सृष्टि हुई। आँवले का वृक्ष श्रीविष्णु को परमप्रिय है। कार्तिक शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को अक्षय नवमी, आँवला नवमी का व्रत रखा जाता है, जिसमें धात्रीवृक्ष का षोडशोपचार पूजन, इसी वृक्ष के नीचे ब्राह्मणभोजन के पश्चात् व्रती को भी इसी वृक्ष ने नीचे बैठकर भोजन करने का विधान है।

### तिल—

प्रचलित नाम— तिल, वानस्पतिक नाम— Sesamum Indicum, कुल— पेडालिएसी। तिल एक पौष्टिक पदार्थ है, यह रक्तशोधक, सुन्दर रूप को देने वाला तथा पापनाशक कहा गया है। मत्स्यपुराण का कथन है— काला तिल भगवान् विष्णु के शरीर से प्रादुर्भूत हैं, अतः ये श्राद्ध की रक्षा करने में सर्वसमर्थ हैं, ऐसा देवगण कहते हैं। गरुड़पुराण में कहा है— तिल की उत्पत्ति श्रीकृष्ण के स्वेद से हुई है, जो पवित्र है। असुर, दानव और दैत्य तिलों के कारण पलायन कर जाते हैं।[15] तिल को पितरों का सर्वश्रेष्ठ खाद्य कहा गया है, इसलिये तिल-दान करने से पितरों को प्रसन्नता होती है।कहा गया है तिल का श्राद्धकर्म में प्रयोग निष्काम पुरुष को नहीं करना चाहिये। महाभारत का कथन है तिल का दान सभी दानों से बढ़कर है।[16] तिल महर्षि कश्यप के अंगों से प्रकट होकर विस्तार को प्राप्त हुए।

**महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः।**

परम बुद्धिमान् महर्षि आपस्तम्ब, शंख, लिखित तथा गौतम— ये तिलों के दान करके दिव्यलोकों की प्राप्त हुए हैं। माघ कृष्ण एकादशी का नाम षट्-तिला एकादशी है। इसदिन छः प्रकार से तिलों का व्यवहार किया जाता है—तिल जल से स्नान, तिल का उबटन,तिल से हवन, तिल मिले जल का पान, तिल का भोजन एवं तिल का दान किया जाता है।

14 स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, कार्तिक मास माहात्म्य, अध्याय -12-॥ सूत उवाच॥॥ कथयामि द्विजश्रेष्ठ यथा चेयं हि पुण्यदा॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां धात्रीपूजां समाचरेत्॥ 3॥ आमर्दकीमहावृक्षः सर्वपापप्रणाशनः॥ वैकुण्ठाख्यचतुर्दश्यां धात्रीछायां गतो नरः॥ 4॥

15 गरुड़पुराण (प्रेतखण्ड, 2/16- मम स्वेदसमुद्भूतास्तिलास्ताक्ष्य पवित्रकाः। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्तथा॥ 16॥

**ईख–**

प्रचलित नाम–गन्ना / इक्षु, वानस्पतिक नाम– Saccharum officinarum, कुल– पोएसी (ग्रेमिनी)। ईख का उपयोग लगभग सभी व्रत-त्योहारों में होता है। यह एक बहुवर्षीय घास ही है जिसके काण्ड एवं अन्तरपर्व स्पष्ट होते हैं, जो मीठे और रसीले होने के कारण पौष्टिक गुणों से भरपूर होते हैं। इसकी पवित्रता और दिव्यता के बारे में मत्स्यपुराण का कहना है– जब सूर्य ने अमृत पीना शुरू ही किया था कि इसकी कुछ बूँदें गिर पड़ी; जिससे ईख की उत्पत्ति हुई। देवयज्ञों एवं अन्य धार्मिक कृत्यों में समान रूप से इसका व्यवहार होता है। महाभारत[17] में भी ईख की चर्चा है।

**शमी–**

प्रचलित नाम– शमी, वानस्पतिक नाम– Prosopis cineraria, कुल– मायमोसी। शमी एक वृक्ष है जिसके बारे में कहा जाता है– इसमें अग्नि का वास है, इसी कारण इसे 'अग्निगर्भा' भी कहा जाता है। एक प्रकरण में महर्षि भृगु के शाप से डरकर अग्निदेव इसी शमी वृक्ष में जाकर अदृश्य हो गये थे, अतः इसे अग्नि का स्थान भी कहा जाता है।[18] पाण्डवों ने अपना अज्ञातवास समाप्त कर विराटनगर में प्रवेश करने के पूर्व सबों ने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रादि को इसी वृक्ष पर छुपाकर रखा था।[19] विजयादशमी को शमी-पूजन करने का विधान है।

**बिल्व–**

प्रचलित नाम–बेल, वानस्पतिक नाम– Aegle marmelos, कुल– रुटेसी। लक्ष्मीजी के हाथ से बिल्व वृक्ष की उत्पत्ति हुई है।[20] बिल्व की तीन पत्तियाँ त्रिनेत्र, त्रिगुण, त्रिदेव का प्रतिनिधित्व करती हैं। देवकार्यों में इसके पत्ते, फल तथा लकड़ियाँ प्रयुक्त होती हैं।

**बाँस–**

प्रचलित नाम– बाँस,वानस्पतिक नाम– Bambos arundinacea, कुल–पोयेसी (ग्रेमिनी)। एकबार व्रज में श्रीकृष्ण 'राधा-राधा' बोलते हुए इतने तन्मय हो गये कि सारा संसार इस संगीतमय स्वर से विमोहित हो गया। देवी सरस्वती भी इस स्वरलहरी को सुनने के लिये चल पड़ी। आकर देखा तो श्रीकृष्ण तन्मयता से गान कर रहे हैं और देवी सरस्वती श्रीकृष्ण पर मोहित हो उनसे अपनी दासी बनाने की प्रार्थना करने लगी,परन्तु श्रीकृष्ण ने कोई ध्यान नहीं दिया। इधर देवी सरस्वती अपना तिरस्कार समझकर जड़वत् होकर बाँस के रूप में उगी। इसी बाँस की बाँसुरी श्यामसुन्दर बजाया करते हैं, इसप्रकार बाँस की मधुर

16 महाभारत, अनुशासनपर्व- 66. 7-11, गीता प्रेस, - पितृणां प्रथमं भोज्यं तिलाः सृष्टाः स्वयंभुवा। तिलदानेन वै तस्मात्पितृपक्षः प्रमोदते॥7॥ माघमासे तिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति। सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति॥8॥ सर्वसत्रैश्च यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन्। न चाकामेन दातव्यं तिलैः श्राद्धं कदाचन॥9॥ महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः। ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः प्रभो॥10॥ पौष्टिका रूपदाश्चैव तथा पापविनाशनाः। तस्मात् सर्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते॥11॥

17 महाभारत : आश्वमेधिकपर्व, अध्याय, 92

18 महाभारत शल्य पर्व- 47/18- वैशम्पायन उवाच॥ भृगोः सापाद् भृशं भीतो जातवेदः प्रतापवान्॥17॥ शमीगर्भमथासाद्य ननाश भगवांस्ततः॥

19 महाभारत, विराटपर्व- 5.28- वैशम्पायन उवाच॥ अथान्वशासन्नकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ आरुह्येमां शमीं वीर धनूंष्येतानि निक्षिप॥28॥

20 वामनपुराण- 17. 8- स्कन्दस्य बन्धुजीवस्तु रवेरश्वत्थ एव च। कात्यायन्याः शमीजाता बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत्॥ 17.8

21 नारदभक्ति दर्शन, पृष्ठ -450

ध्वनि से देवी सरस्वती को ही सम्मानित करते हैं।[21]

**कदली–**

प्रचलित नाम– केला, वानस्पतिक नाम– Musa sapientum, कुल– म्यूसेसी। धार्मिक आध्यात्मिक कार्यों में केले का प्रयोग होता है। कहा जाता है केले के वृक्ष में साक्षात् श्रीहरि का वास है। विशेषकर वृहस्पतिवार को केले के पूजन की महत्ता बतलायी जाती है। इसे सुख और सम्पन्नता का प्रतीक मानकर देव एवं मांगलिक कार्यों में इसके पत्तों एवं तने का प्रयोग किया जाता है। भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को स्वास्थ,सौन्दर्य एवं सन्तान आदि की रक्षा के लिये कदलीव्रत करने का विधान है।

**नारियल–**

प्रचलित नाम– नारियल, खोपरा, वानस्पतिक नाम – Cocos nucifera, कुल– एराकेसी या पोलमेसी। नारियल पर बनी तीन आँखों की तुलना भगवान् शिव के त्रिनेत्र की जाती है। धार्मिक-आध्यात्मिक कार्यों में नारियल का प्रयोग शुभ एवं सम्पन्नता का प्रतीक मानकर तथा किसी मांगलिक कार्य का आरम्भ सर्वप्रथम नारियल को फोड़कर करने की परम्परा है। घट-स्थापन के समय कलश के ऊपर नरियल रखकर समस्त देवताओं का आवाहन किया जाता है। नारियल महिलाओं के द्वारा नहीं फोड़ी जाती, क्योंकि इससे सन्तान के जीवन में समस्यायें आ सकती हैं–ऐसा कहा जाता है। श्रीफल के रूप में जाना जाने वाला नारियल भगवान् शिव, विष्णु एवं लक्ष्मी को अतिशय प्रिय है।

**पलाश–**

प्रचलित नाम– ढाक या टेसु, वानस्पतिक नाम– Butea monosperma, कुल–फेबेसी। पलाश का फूल झारखण्ड सरकार का राजकीय फूल भी है। इसके एक ही वृन्त में स्थित तीन पत्ते त्रिदेवों की उपस्थिति दर्शाते हैं। हिन्दू धर्म के धार्मिक अनुष्ठानों में पलाश के तने, पत्ते आदि को सर्वोपरि महत्ता है। कहा जाता है अग्निदेव को भगवान् शिव एव देवी पार्वती का एकांत भंग करने के कारण शापवश पृथ्वी पर पलाश वृक्ष होकर उत्पन्न होना पड़ा। वसन्त काल में जब इसके वृक्षों में फूल (इसके चटकीले लाल रंग के कारण) लगते हैं तब ऐसा प्रतीत होता कि जंगल में आग लग गयी हो। पलाश का उपयोग चन्द्रग्रह के हवन की समिधा में भी किया जाता है। विशेषकर यज्ञोपवीत संस्कार में पलाश दण्ड को धारण करना पड़ता है। यमराज के दाहिनी बगल से पलाश वृक्ष की उत्पत्ति हुई है।[22]

**कुश–**

कुश की गणना तृणों में होती है, जिसका वानस्पतिक नाम Eragrostis cynosuroides, कुल– 'पोयेसी'। विष्णुधर्मोत्तर पुराण का कथन है– भगवान् के वराहावतार में विष्णु के बालों एवं पसीने से दर्भ की उत्पत्ति हुई।[23] मत्स्यपुराण का कथन है– कुश और काला तिल भगवान् विष्णु के शरीर से प्रादुर्भूत हैं, अतः ये श्राद्ध की रक्षा करने में सर्वसमर्थ हैं–ऐसा देवगण कहते हैं।

**विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा।**
**श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवोकसः॥**[24]

वहीं महाभारत के आश्वमेधिकपर्व (अ.92) में कुश के सन्दर्भ में कहा गया है–

**दर्भाः संस्तरणार्थं तु रक्षसां रक्षणाय च।**

22 वामन पुराण -17/7- यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे। कृष्णोदुम्बरको रुद्राज्जातः क्षोभकरो वृषः॥ 17.7
23 विष्णुधर्मोत्तर पुराण 1.139.12- प्रस्वेदाच्च तिलान्कृत्वा दर्भान् रोमभ्य एव च॥ जलप्रस्रवणाभ्याशे तस्मिन् गिरिवरे तदा॥ 12॥
24 मत्स्य पुराण- 22/89

कुशों की उत्पत्ति हवनकुण्ड के चारों ओर फैलाने और राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के निमित्त हुई है। कुश में त्रिदेवों का निवास है— ऐसा गरुड़पुराण, प्रेतखण्ड (2/21-22) का कहना है। कुश की जड़ों में ब्रह्मा मध्यभाग में विष्णु एवं अग्रभाग में शंकर विराजते हैं। ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि एवं तुलसीदल बार-बार प्रयुक्त होने पर भी निर्माल्य (प्रयोग के अयोग्य या बासी) नहीं होते।

**चन्दन—**

प्रचलित नाम— श्वेत चन्दन / मलयज, वानस्पतिक नाम—Santalum album कुल —सेंटालेसी। रक्तचन्दन, वानस्पतिक नाम— Pterocarpus santal lnus, कुल—फेबेसी। इसके अतिरिक्त इसकी एक तीसरी प्रजाति पीला चन्दन का भी विवरण मिलता है। चन्दन की शीतलता, पवित्रता, सात्विकता और सुगन्धरूपी विशेषता के कारण देव एवं पितृ कार्यों में व्यवहृत होता है। पर्यावरणविदों की मान्यता है कि चन्दन का पेड़ अपने लगभग 100 मीटर के दायरे में अपनी सुगंध बिखेरता है। इसमें चिकित्सकीय गुण भी पाये जाते हैं, इसका सबसे बड़ा गुण है—इसमें पाया जाने वाला एण्टीबैक्ट्रियल तत्व, जो संक्रमण को रोकता है। इसका उपयोग अधिकतर मस्तिष्क (ललाट) पर होता है, जिसे धारण करते समय यथाविधि मन्त्रसहित लगाने का विधान है। यह मस्तिष्क को शान्त, शीतल और सुगन्धित रखता है— तभी तो इसे धारण करते समय यह कामना की जाती है— चन्दन हमें पवित्र करे, पावन रखे, पापनाशन हों, आपदा-विपदा को हरने वाला हो, लक्ष्मीदेवी को प्रसन्नता मुझपर सदैव बनी रहे। इसप्रकार इसके प्रयोग भौतिक और अध्यात्मिक दोनों ही रूप से होते हैं। वामन पुराण (17/10)के अनुसार साध्यों के द्वारा हरिचन्दन की उत्पत्ति हुई है, इसी कारण सभी देवताओं के लिये चन्दन प्रियकर हैं।

**कदम्ब—**

प्रचलित नाम— कदम्ब, प्रियक, वानस्पतिक नाम — Neolamarckia cadamba, कुल— रुबिऐसी। कदम्ब ऐसा दिव्य वृक्ष है जिसका सीधा सम्बन्ध श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित है। यमुना के किनारे इसी वृक्ष पर श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ कण्दूक क्रीडायें किया करते थे। श्रीभागवतजी में प्रसंग है—

**तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन**
**दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः।**
**कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्ग-**
**मास्फोट्य गाढरशनो न्यपद् विषोदे॥**[25]

अर्थात् भगवान् का अवतार तो दुष्टों का दमन करने के लिये ही होता है। जब इन्होंने देखा कि उस कालिय साँप के विष का वेग बड़ा ही प्रचण्ड है और इसी कारण से मेरे विहार का स्थान यमुनाजी दूषित हो गयी है, तब भगवान् ने अपनी कमर में फेंटा कसकर एक बहुत ही ऊँचे कदम्ब के पेड़ पर चढ़ गये और वहाँ से ताल ठोकते हुए उस विषैले जल में कूद पड़े। कामदेव के करतल के अग्रभाग से कदम्ब वृक्ष की उत्पत्ति हुई है।[26]

**धतूर—**

प्रचलित नाम— धतूरा, वानस्पतिक नाम— Datura metal (काला धतूरा) कुल— सोलानेसी। एक

25 श्रीमद्भागवत : 10/16/6
26 वामन पुराण- 17/2- कन्दर्पस्य कराग्रे तु कदम्बश्चारुदर्शनः। तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते॥

अन्य प्रकार के धतूरा का भी वर्णन मिलता है, जिसे कनक– धतूरा कहा जाता है, इसके कुल वही हैं, परन्तु वानस्पतिक नाम Datura stamonlum. भगवान् शंकर के हृदय के द्वारा धतूर वृक्ष उत्पन्न हुआ। धतूर शिवजी को सदा सर्वदा ही प्रियकर है।[27]

**खैर–**

प्रचलित नाम– खैर या खादिर, वानस्पतिक नाम Acacia catechu कुल– माइमोसी (लेगुमिनोसी। ब्रह्माजी के शरीर के बिचले भाग से खैर वृक्ष की उत्पति हुई है। इसकी लकड़ी समिधा में प्रयुक्त होती हैं।

सृजनकर्ता भगवान् की अनुपम भेंट हमें लता, पादप, वृक्ष, कन्द, त्वक्सार आदि जैसे रूपों में मिले हैं। संसार में कोई भी पादप, वनस्पति अविशेष नहीं बल्कि अतिविशेष हैं। इनका सम्मान भगवद्विभूति का सम्मान करने के बराबर है। उपर्युक्त तो उदाहरण मात्र हैं। पौधों की प्रशस्ति में ऋग्वेद का सम्पूर्ण सूक्त[28] (10/97) में मुख्यतः इनकी उपशमन करने की शक्ति में समर्पित है। इन्हें माता या देवी के रूप में चित्रित किया गया है। अथर्ववेद में ओषधि के रूप में प्रयुक्त होनेवाली किसी भी जड़ी को 'पृथ्वी माता पर उपजी देवी' कहा गया है।[29] बड़े वृक्षों को जिन्हें 'वनस्पति' कहा गया है– उन्हें वनों का अधिपति समझना चाहिये। हिन्दू धर्म के इतर आदिवासी समुदायों में वृक्ष-पूजा एक आवश्यक कृत्य माना जाता है तथा इन्हें एक रक्षक देव के रूप में भी मान्यता है।

***

27. वायु पुराण 17/4- महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः। संजातः स च शर्वस्य रतिकृत् तस्य नित्यशः॥
28. या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥1॥ इत्यादि
29. अथर्ववेद- 6/136/1- देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे। तां त्वा नितत्रि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि॥1॥

## श्रीताल : सरस्वती की साक्षात् मूर्ति

प्राचीन काल में पोथियाँ तालपत्र पर लिखी जाती थीं। यह विशेष प्रकार का ताड़ का पेड़ होता है। इसके सभी पत्ते जड़ से ही निकलते हैं अतः इसकी ऊँचाई अधिक नहीं होती है। पत्ते अधिक लंबे तथा टिकाऊ होते हैं। पत्तियों की चौड़ाई भी चार इंच तक होती है तथा सामान्य ताड़ की पत्तियों की अपेक्षा इसकी मोटाई बहुत कम होती है फलतः लचीलापन अधिक होता है। इस लिखी पुस्तक 1500 वर्षों तक रह सकती हैं। इसे बजरबट्टू भी कहा जाता है। मान्यता है कि इसकी जड़ में जल देने से सरस्वती की विशेष कृपा होती है। इसे आलय में लगाना शुभ माना जाता है।

# उत्कलीय परम्परा में वृक्षपूजा

डा. ममता मिश्र 'दाश'

**वनस्पति-जगत् से मानव जगत् का सीधा सम्बन्ध है। मानव शरीर का अन्नमय कोष वनस्पति जगत् की देन है, अतः इसके बिना मानव जीवन सम्भव नहीं। स्वाभाविक है कि इस प्रत्यक्ष संबन्ध को देखते हुए हमारे आस्थावान् पूर्वजों ने वनस्पतियों -वृक्षों को देवता की संज्ञा दी। वस्तुतः वन के स्वामी वनस्पति शब्द ही देवतावाची है। वेदों ने द्यौः, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आपस्, ओषधि, विश्वेदेव, ब्रह्म के साथ वनस्पति के लिए भी शान्तिपाठ किया तो आगम की परम्परा ने इन्हें देवता मानकर विधिवत् पूजा-उपासना की विधि दी। लोक-परम्परा में अनेक पर्व भी वृक्ष-पूजन से सम्बन्धित प्रचलित हुए। साथ ही अनेक स्थानों पर विशिष्ट वृक्षों में देवत्व की अवधारणा प्रसिद्ध हुई। उड़ीसा की लोक-परम्परा तथा शास्त्रीय परम्परा में वृक्षपूजा पर यहाँ विस्तार से लिखा गया है।**

हमारे जीवन का सबसे मुख्य अंग है अम्लजान (Oxygen) और वह हमें मिलता है वृक्षों से। वेद से लेकर उपनिषद् तक, पुराणों से लेकर स्थल माहात्म्य तक हर ग्रन्थों में वृक्ष सम्बन्धीय आलोचना प्राप्त है।

वृक्षों की सुरक्षा के लिए वृक्ष पूजा की परम्परा हमारी दैनिक जीवनचर्या में प्रचलित है ताकि एक साधारण व्यक्ति पेड़ की सुरक्षा करे और पेड़ को सम्मान दे।

इसीलिए हमारी आगम-परम्परा में वृक्षपूजा एक मुख्य अंग रही है। 'सूक्ष्मागम' के 79वें पटल में वृक्षपूजाविधि का उल्लेख है –

**वृक्षपूजाविधिं वक्ष्ये शृणु त्वं तत्प्रभञ्जन।**
**आयुःश्रीकीर्तिवृद्धिं च पुत्रधान्यविवर्धनम्॥ 1॥।**
**वृक्षपूजाद्वैविध्यम्**
**सामान्यं च विशेषं च वृक्षपूजा द्विधोच्यते।**
**अश्वत्थादिकवृक्षांश्च यजेत् सामान्यमीरितम्॥2॥**
**यद् वृक्षे देवधामेषु शम्भुसान्निध्यसंस्थितम्।**
**तद्विशेषमिति ख्यातं तस्यार्चनमुदाहृतम्॥3॥**
**स्थानशुद्धिः –**
**प्रातःसन्ध्यावसाने तु दिव्यवृक्षाग्रदेशतः।**
**बहुरूपेण संशोध्य लेपनं पुरुषेण तु॥4॥**
**पुण्याहं वाचयेत्तत्र द्रव्यान् संप्रोक्ष्य चास्त्रतः॥**
**पाद्यादीनि तु संसाध्य विघ्नेशं पूजयेद्गुरुः॥5॥**
**द्वारपूजां ततः कृत्वा वृक्षं प्रक्षाल्य हेतिना।**
**वृक्षपूजा–**
**आसनं मूर्तिमूलं च पूर्ववत् कल्पयेद्बुधः॥ 6॥**

**वृक्षं शिवमयं ध्यात्वास्नानं पूर्ववदाचरेत्।**
**वस्त्रं माल्यं च गन्धं च शिवमन्त्रेण दापयेत्॥7॥**
**नैवेद्यं दापयित्वा तु धूपं दीपं च भस्मकम्।**
**ताम्बूलं दापयेद् धीमान् स्तोत्राद्यैश्चैव तोषयेत्॥8॥**
**एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वा समाचरेत्।**
**एवं दिने दिने कुर्याच्छिवलोके महीयते॥9॥**
**इति वृक्षपूजाविधिः**

वृक्ष की पूजा हम करते हैं। लेकिन वृक्ष के सारे अंग जैसे पत्ता, फूल, फल, कभी कभी मूल भगवान की पूजा के लिए उपयोग करते हैं।वृक्ष पूजा को महत्त्व देने के लिए हर देवालय में (खासकर शिव मन्दिर) स्थल वृक्षों की स्थापना की गयी है। हर एक मन्दिर में एक स्थल वृक्ष होता है। कहीं वट वृक्ष तो कहीं अश्वत्थ और कहीं आमलकी, कहीं बकुल तो कहीं बांस। ये सब स्थलवृक्ष साधारण जनता के मनोभावों से जुड़े हैं। कोई सन्तान के लिए तो कोई अपना घर बनाने के लिए तो कोई एक सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए इन स्थल वृक्षों पर माथा टेकते हैं।

और इन सब स्थल वृक्षों के साथ एक एक किंवदंती जूड़ी है।

## श्रीजगन्नाथ क्षेत्र और यहाँ के वटवृक्ष –

श्रीजगन्नाथ क्षेत्र श्रीमन्दिर में वटवृक्ष स्थल वृक्ष के आधार पर पूजित है, जिसे कल्पवट कहा जाता है। श्रीमन्दिर परिक्रमा के नियम के अनुसार जब पूर्व द्वार से मन्दिर के अन्दर प्रवेश करते हैं तो अन्दर वाम पार्श्व यानी दक्षिण दिशा की ओर यह कल्प वट है। परिक्रमा नियम के अनुसार कल्पवट दर्शन के बाद ही श्री जगन्नाथ दर्शन करने की विधि है। मन्दिर के अन्दर स्थित सारे देवालयों से यह पुराना लगता है। विश्वास है यह वट वृक्ष त्रिदेव यानी ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर का रूप है और कोई भी मनोवांछा यहाँ पूजा करने पर पूर्ण होती है।

## श्रीक्षेत्र और दूसरे वटवृक्ष –

श्रीक्षेत्र पुरी में कल्पवट को मिलाकर सात वट वृक्ष विराजमान हैं और ये वृक्ष कबसे हैं इसका अनुमान उपलब्ध नहीं है। और सारे वट वृक्षों के साथ एक एक किंवदंती जुड़ी है।

प्रान्तीय भाषा में वट वृक्ष को 'बरगछ' बोलते हैं।

### 1. सोलाखिआ वट –

सिंहद्वार से जब स्वर्गद्वार तक जाते हैं तो रास्ते पर यह आता है। बोलते हैं जब मृत शरीर को इस रास्ते पर लेकर जाते हैं तो यहाँ पर मृत शरीर का वजन बढ़ जाता है। इस वृक्ष से स्वर्गद्वार तक रास्ते को प्रेत भूमि भी बोलते हैं। श्मशानवासी अर्धनग्न बहुत साधु इस पेड़ के नीचे आश्रय लेते हैं। बोलते हैं कर्णामगिरि बाबा के नाम पर एक साधु इस पेड़ के नीचे रहते थे और सिर्फ भिगे हुए चन्ना (प्रान्तीय भाषा में सोह्ला या सोला) खाकर अपना जीवन व्यतीत करते थे। जबकि ये बाबा सिर्फ चन्ने खाकर दिन बिताते थे, उस बाबा के अनुसार इस वटवृक्ष का नाम सोलाखिआ वट (सोलाखिआ वर गछ) पड़ा। हर व्यक्ति के जन्म मृत्यु के साक्षी भूत यह वटवृक्ष अभी भी खड़ा है।

### 2. गोछन्द वट

समुद्री तटवर्ती इस वृक्ष के नीचे षोडश शतक के सन्त कवि अच्युतानंद दास का मठ था, जिसका नाम था गंधर्व मठ। इसी वटवृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने प्रसिद्ध 'शून्य संहिता' की रचना की थी। शायद इस पेड़ का मूल भाग एक दूसरे से गोछन्द जैसे बन्धे हैं, इसीलिए इसका नाम गोछन्द वट पड़ा है।

### 3 काउंरिआ वट

श्रीक्षेत्र का प्रवेशद्वार है 'अठरनला'। इसी अठरनला से लगभग तीन कि.मि. से पहले एक प्रसिद्ध देवी पीठ है 'बाटमंगला'। बाट– रास्ता। रास्ते पर

स्थित होने के कारण इस देवी का नाम बाटमंगला पड़ा है। इसी मन्दिर के पास 'बाटगां' नामक एक गाँव है और यहाँ पर एक वटवृक्ष था जिसका नाम है काउंरिआ वट। पहले जब यातायात के लिए कोई साधन नहीं था और भक्त लोग पैदल यात्रा करते थे तो इसी वटवृक्ष के नीचे विश्राम करते थे। लेकिन दुर्भाग्यवश 1999 की वात्या में इस वटवृक्ष का मूलोत्पाटन हो गया। संकेत स्वरूप इसके पास स्थित काउंरीवट महादेव मन्दिर ही विद्यमान है। इस 'काउंरिआ' नाम के पीछे भी एक कहानी है जो असम की कामाक्षी देवी और उनकी एक साधिका से सम्बंधित है।

## 4. काम्यवट

जगन्नाथ मंदिर के पूर्व द्वार के सामने जो रास्ता है उसे 'दोलमण्डप साहि' बोलते हैं। बस इसी रास्ते पर जाने से लगभग आधे कि.मी. दूर स्थित एक त्रिकोण स्थल है, वहाँ अंगिरा महर्षि का आश्रम हुआ करता था। इसी आश्रम के अन्दर यह काम्यवट है। श्री मन्दिर के कल्पवट से काम्यवट के पथ की महिमा बहुधा वर्णित है।

## 5. निकुम्भिला वट –

श्रीमन्दिर के दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर लगभग एक किमी दूरी पर यमेश्वर नाम का एक महादेव मन्दिर है, जिसके प्रांगण में यह वट वृक्ष विराजमान हैं। विश्वास है महर्षि कण्डु के समय से यह वृक्ष यहाँ पर है। पुरी में अनुष्ठित रामलीला के अवसर पर रावण नामधारी नायक इस पेड़ के नीचे श्रीराम के साथ युद्ध पर विजय प्राप्त करने के लिए यज्ञ कलता है। और यह परम्परा अभी भी प्रचलित है। श्रीलंका में स्थित रावण की कुलदेवी निकुम्भिला के नाम पर इस वटवृक्ष का नाम निकुम्भिला पड़ा है।

## 6. अघोर वट –

श्रीक्षेत्र के मार्कण्डेय तीर्थ यानी मार्कण्डेय पुष्करिणी पास यह वटवृक्ष विराजमान है। विश्वास है मार्कण्डेय महर्षि को इस पेड़ के नीचे सिद्धि मिली थी। अघोरी उपासक और शैव सम्प्रदायों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।

## 7. कल्पवट

श्री क्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण वट रहा है यह 'कल्पवट'। इसे वांछावट भी कहा जाता है। इस वट वृक्ष के चारों तरफ वटगणेश, वटमाधव आदि मन्दिर हैं। इस वटमाधव मन्दिर में श्रीजगन्नाथ पूजित हैं, जो दक्षिणाभिमुखी हैं।

## उत्कलीय लोक परम्परा में वृक्षपूजा –

ऐसी कोई पूजा नहीं, जो दूर्वा, बदरिका और आम पत्र के विना सम्भव है। चाहे दैनंदिन पूजा में तुलसी, बिल्व दल से हो जाए, परन्तु कोई भी विशेष पूजा दूर्वा और बदरी पत्ते के विना सम्भव नहीं है।

इसके बाद कुछ स्वतंत्र पूजाएँ अनुष्ठित होती हैं, जहाँ वृक्ष की आवश्यकता है। कार्तिक महीने की शुक्ल पक्ष नवमी तिथि पर आमलकी नवमी (प्रान्तीय

**वटपूजा का पर्व वटसावित्री**

चित्र साभार : http://cpreecenvis.nic.in/

भाषा में अंलानवमी) जब आमलकी वृक्ष की पूजा की जाती है।

ज्येष्ठ मास अमावस्या तिथि को सावित्री अमावस्या बोलते हैं। उत्कल के कुछ भाग में शिलवटे को लेकर पीसे हुए हल्दी के सहारे सावित्री देवी की एक प्रतिमूर्ति बनाकर पूजा करते हैं। पर कुछ भागों में, विशेष रूपसे पश्चिम ओडिशा में वट वृक्ष की पूजा वटसावित्री के नाम पर की जाती है।

## बकुल अमावस्या –

पौष मास की अमावस्या तिथि पर बकुल अमावस्या पालन करते हैं, जब पायस के साथ बकुल (आम्रबकुल) मिलाकर भगवान् को नैवेद्य चढ़ाते हैं।

## षष्ठी पूजा –

भाद्रपद शुक्ल पक्ष षष्ठी तिथि को यह पर्व सन्तानों की दीर्घ जीवन और स्वस्थ जीवन कामना में मनाया जाता है। इसमें छह प्रकार के फल, फूल व्यवहृत होते हैं और छह गुल्मों की डालियाँ इकट्ठा कर बच्चों को पीटा (धीरे से) जाता है ये छह पेड़ हैं– अपामार्ग, वज्रमूली, आमलकी, अरबी, रतालू, और जुई। स्थल विशेष पर अरबी, जुई, धान, बदरिका, अपामार्ग और वज्रमूली का व्यवहार है। कहीं कहीं पर आमला डाली का प्रयोग भी होता है। बच्चों को पीटने के समय मां बोलती है – *वज्र वनो, वज्र वनो, वज्र वनो*।

ये सब लोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाते हैं।

## लक्ष्मीपूजा पर व्यवहृत वृक्ष–

मार्गशीर्ष महीने के प्रति गुरुवार को महालक्ष्मी पूजा लगभग हर ओडिशावासी के घर होती है। इसमें धान्यकेण्डा की पूजा होती है। इसके साथ साथ दूर्वा, बदरिका पत्ता, आम की छोटी डाली और पत्ता, और छोटी-छोटी मूलियों (पत्तों के साथ) का व्यवहार भी होता है।

नीम वृक्ष की पूजा बहुत स्थल पर की जाती है।

वटाश्वत्थ विवाह की परम्परा उत्कलीय परम्परा में लोकप्रिय है।

हर बड़ी-बड़ी पूजा से पहले अश्वत्थ वृक्ष की प्रदक्षिणा करना एक प्रमुख अंग है।

अगर गाँव के प्रवेश द्वार (दोनों तरफ) एक अश्वत्थ वृक्ष है तो गाँव की स्त्रियाँ यहाँ साम को दिया लगाते हैं।

## श्रीक्षेत्र का बकुल धाम–

श्री मन्दिर से लगभग एक डेढ़ किमी दूरी पर सिद्ध बकूल मठ है, जिसका मुख्य आकर्षण है एक बकूल वृक्ष। किंवदंती है कि श्री चैतन्य जब श्रीक्षेत्र में रहते थे इसी अंचल में रहते थे। एक दिन बकुल वृक्ष की एक डाली लाकर उससे दातून बनाकर दातून किया और उसे मिट्टी के नीचे रख दिया। कुछ दिनों के बाद वहां से एक बकुल वृक्ष अंकुरित हुआ और धीरे धीरे बढ़ता गया। श्री चैतन्य सम्प्रदाय भक्तों के लिए वह एक महान् तीर्थ स्थल है।

## ओड़िशा में शाखोटक वृक्ष से शादी –

अगर किसी व्यक्ति विशेष की दूसरी शादी असफल रही या दूसरी पत्नी की मौत हो गयी और वह तीसरी शादी करना चाहे तो उसकी तीसरी शादी शाखोटक पेड़ के साथ होती है और बाद में किसी महिला के साथ शादी होने की परम्परा है।

ओड़िशा की आद्यकृति महाभारत जो पंचदश शताब्दी में सारलादास के द्वारा विरचित हुआ था। इसके आदि पर्व में गांधारी का प्रथम विवाह एक शाखोटक वृक्ष के साथ हुआ था। कन्या के जन्म के उपरान्त जब गांधारसेन व्यास महर्षि से कन्या के राशि नक्षत्र के आधार पर कन्या के भविष्य के बारे में पूछते हैं तो व्यास देव भविष्य वाणी सुनाते हुए बोलते हैं –

कन्या का जन्म अमावस्या तिथि पर कृतिका नक्षत्र में हुआ है। इस उआंसी कन्या (अमावस्या को प्रान्तीय भाषा में उआंस बोलते हैं) के साथ जिसकी शादी होगी उसकी मौत सुनिश्चित है। पर इसके प्रतिकार के रूप में बोलते हैं कि अगर एक साहाडा (शाखोटक का उत्कलीय रूप) वृक्ष के साथ शादी हो जाय तो कन्या की दुर्दशा दूर हो जायेगी।

इस अवसर पर शाखोटक वृक्ष की महिमा, इसकी पूजा करने पर क्या उपकार उपलब्ध होता है ये सब विस्तृत रूप से वर्णित है। इस। यात्रा के अवसर पर एक शाखोटक वृक्ष आ जाने से इस पेड़ से एक पत्ता लेकर मस्तक पर धारण करना है। और तुलसी, बदरी, श्वेत दूर्वा जैसे पेडों का वर्णन भी है। यहाँ उल्लेख करना समीचीन होगा कि यह सब महादेव के पूछने पर वृषभराज ही व्याख्यान करते हैं।

गांधारी का विवाह शाखोटक वृक्ष के साथ होता है और देखते ही देखते वह पेड़ मर जाता है। और व्यास देव के अनुसार इस शादी से गांधारी का सर्वारिष्टशान्ति हो गयी।

इन सब सामाजिक स्थिति को, सब पेड़ों के आयुर्वेदीय गुणों को सामने रखकर हमारे विद्वानों ने वृक्षों का रोपण, रक्षण, पूजन आदि को लेकर बहुत ग्रन्थों की रचना की हैं। कुछ विशेष ग्रन्थ—

तुलसीपूजा, तुलसीकवच, तुलसीमाहात्म्य, तुलसी -चन्द्रिका श्रीराजनारायणमुखोपाध्यायकृता, तुलसी-पूजाविधि, तुलसीविवाहविधि, बिल्ववृक्षमाहात्म्य, बिल्ववृक्षपूजन, वृक्षप्रतिष्ठा विधि, वृक्षरोपण महिमा, वृक्षायुर्वेद, वृक्षारामप्रतिष्ठाविधि जैसी बहुत कृतियाँ उपलब्ध है। उदाहरण के तौर पर एक पुस्तक की सूचना यहाँ प्रस्तुत है —

## तुलसीचन्द्रिका— श्रीराजनारायणमुखोपाध्याय-कृता

16 काण्ड संवलित इस पुस्तक में तुलसी वृक्ष के साथ साथ आमलकी और बिल्व वृक्ष के बारे में सूचना दी गयी है।

Beginning.

**वन्दे विघ्नेश्वरं तारं विघ्नव्यूहहरं परम्।**

End.

**चतुर्वर्गैकदातारं भासुरं विततोदरम्॥**
**सङ्क्षेपतो मया प्रोक्ता तुलसोचन्द्रिका शुभा।**
**दोषादिकं विविच्य ज्ञैः क्षन्तव्यं मदनुग्रहात्॥**
**इति श्रीराजनारायणमुखोपाध्यायकृता तुलसी-चन्द्रिका समाप्ता।**

इसमें उपलब्ध विषय—

**तुलस्युत्पत्तिः, तुलसीपूजा-प्रमाण, तुलसी रोपणमाहात्म्य, तुलसीकानन माहात्म्य, तुलसी-मार्जनादिमाहात्म्य, तुलसीचयनप्रमाणं, तुलसीचयन-निषेधकालः, सर्व- देवपूजायां तुलसीदान-प्रमाणं, गणेशपूजायां तुलसीदाननिषेधः, तुलसी- काष्ठ-मालाधारणप्रमाणं, बिल्ववृक्षोत्पत्तिः, बिल्वपत्रचयन-कालनिषेधः, तच्चयनमन्त्रश्च, आमलक्युत्पत्तिः, तन्माहात्म्यञ्च।**

इन विषयों के साथ साथ इस ग्रन्थ में - **ब्राह्मणानां हिंसानिषेधः, कलौ श्राद्धादिषु मांसदाननिषेधः, वैधहिंसाविचारः, वैष्णवमाहात्म्यादिकथनम्** आदि सब भी वर्णित है।

***

# अक्षय वट की महिमा

(नारायण भट्ट कृत त्रिस्थलीसेतु में संकलित)

अथ वटमहिमा ब्राह्मे-

तत्र चाऽऽस्ते वटो दिव्यः सर्वदेवमयो महान्।
तस्य संस्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
मूलं विष्णुः स्वयं साक्षात्स्कन्धा लक्ष्मीः स्वयं शुभा।
पत्राणि भारती देवी पुष्पाणि विबुधेश्वरः॥
ब्रह्मा फलानि सर्वाणि सर्वाधारो हरिः प्रभुः।
वेदशास्त्रपुराणानि दानतीर्थव्रतानि च॥
तानि सर्वाणि वर्तन्ते प्रयागवटके शुभे।
प्रयागस्य घटं पुण्यं यः समाश्रित्य पुण्यकृत्॥
यानि श्रेयांसि कुरुते तदानन्त्याय कल्पते।
यः पुमान् वटमाश्रित्य सर्वदेवेश्वरं हरिम्॥
पूजयेत् परया भक्त्या तस्य वासो हरेः पुरे।
पूर्वजन्मार्जितैः पुण्यैर्लब्ध्वा क्षेत्रमनुत्तमम्॥
प्रयागवटमासाद्य मुक्तो भवति पातकी।
वेण्यां स्नात्वा महात्मानो वटमासाद्य भक्तितः॥
हृषीकेशं समभ्यर्च्य यान्ति विष्णोः परं पदम्।
सितासिते यत्र तरङ्गचामरे
नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके॥
नीलातपत्रं वट एव साक्षात्
स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ इति।

पाद्मे —

अक्षयोऽयं सुरैः सेव्य आपातालजटो वटः।
कण्डसूनुना यत्र प्रविश्य मन्मुखे स्थितम्॥
लोके जलाकुले सोऽयं योगशायी मुरान्तकः।
सेयं भगवती शम्भोर्वल्लभा ललिता भृशम्॥
सिद्ध्यर्थं सेव्यते सिद्धैर्मुक्तिमुक्तिफलप्रदा। इत्यादि।

# वनस्पति और हमारे लोकपर्व

**श्रीमती शारदा नरेन्द्र मेहता**
(एम.ए. संस्कृत विशारद)
Sr. MIG-103, व्यास नगर, ऋषिनगर विस्तार
उज्जैन (म.प्र.) 456010

**यह गौरव का विषय है कि सम्पूर्ण भारत की लोकसंस्कृति में भी एकात्मकता है। पिछले आलेख में हमने उड़ीसा की लोक संस्कृति में वृक्ष-पूजा पर विशेष विवेचन पढ़ा यहाँ हम उज्जैन एवं उसके आसपास की संस्कृति को देखते हैं। यहाँ भी वर्ष भर में अनेक पर्व हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वृक्ष-उपासना से जुड़े हुए हैं। यहाँ की कुछ लोक-परम्पराएँ अनूठी हैं। जैसे यहाँ "वर्ष प्रतिपदा (गुड़ी पड़वा) हिन्दू नववर्ष का प्रारम्भ पर्व है। इस दिन कड़वे नीम की पत्तियाँ चबाकर खाने की परम्परा है। इसे मिश्री तथा कालीमिर्च के साथ खाने का विधान है। दक्षिण भारतीय परिवारों में घर के ऊपर एक काष्ठ दण्ड पर लोटा रखकर उस पर साड़ी, शकर का हार तथा नीम की डाली पर पुष्प हार अर्पित कर टाँगा जाता है। श्रीखण्ड और पूरण पोली का नैवेद्य लगाया जाता है।" इसप्रकार की अनेक विशेषताएँ इस क्षेत्र में है किन्तु संस्कृति की एकात्मकता की झलक हमें भाव-विभोर कर देती है।**

वनस्पति का हमारी सनातनीय संस्कृति में अति प्राचीन सम्बन्ध है। हमारे दैनिक जीवन में किसी न किसी रूप में हम प्राकृतिक सम्पदाओं पर आश्रित हैं। सम्पूर्ण भारत में हमारे पर्व प्राकृतिक सम्पदाओं पर आश्रित हैं। हमारे यहाँ प्रत्येक पूजन सामग्री में आम, अशोक के पत्ते, विभिन्न फल फूल, नारियल, सुपारी, लौंग, इलायची, पान के पत्ते, खारक बादाम, सिन्दुर, मेंहदी, हल्दी, कुंकुम, धूपबत्ती, कपूर, चंदन, कपास की बाती, कच्चा सूत, कलावा, कमल के फूल, मखाने, सीताफल, रामफल, कत्था, लाख, गौंद ,हवन की समिधा, आदि अगणित वस्तुएँ वनस्पति सम्पदा से ही प्राप्त होती हैं। हमारे आयुर्वेद की प्रत्येक औषधि वन सम्पदा की देन है। हमारी नवीन पीढ़ी को चाहिये कि वे ऐसी बहुमूल्य सम्पदा को संरक्षित करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ रहते हुए भावी पीढ़ी को दिशा-निर्देश दे कि उन्हें नये पौधों को रोपित कर इस विशाल सम्पदा को संरक्षित करना है।

माह जनवरी में मकर संक्रान्ति का पर्व तिल की फसल का प्रमुख पर्व है। गुड़-तिल का दान तथा पतंग व गुल्ली-डंडा खेलना इस पर्व की विशेषता है।

माह फरवरी में बसन्त ऋतु का प्रमुख पर्व है बसंत पंचमी। पूजन में आम वृक्ष की मञ्जरी माँ सरस्वती को अर्पित की जाती है।

फरवरी मार्च में महाशिवरात्रि का पर्व भगवान् शिव तथा पार्वती के विवाहोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

शिवलिंग पर बिल्व पत्र, धतूरा, बेर ऑकड़े के फूल ,विभिन्न प्रकार के फल तथा फूल शिव पूजन में समर्पित किये जाते हैं।

मार्च माह में होली पर्व हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न होता है। होली के मध्य में अरण्ड का दण्ड स्थापित किया जाता है। इसके आस-पास विभिन्न वृक्षों की टहनियाँ जमायी जाती है। गोबर के कण्डे आस-पास जमाये जाते है। नारियल, पुष्प, भोजन सामग्री, धूपदीप, पूजन सामग्री से पूजन किया जाता है। रंगों का पर्व धुलेण्डी तथा रंगपंचमी आबाल-वृद्ध के हृदय में आनन्द का संचार करता है। पारिजात, पलाश आदि के पुष्पों से प्राकृतिक रंगों का उपयोग कर हम अपनी त्वचा को केमिकल (रासायनिक) युक्त रंगों से सुरक्षित रख सकते हैं।

मार्च माह में शीतला माता पूजन किया जाता है। माता का स्थान सामान्यतया बड़, पीपल, तथा नीम के वृक्षों के नीचे ही रहता है। सभी प्रकार की पूजन-सामग्री का उपयोग किया जाता है।

दशा दशमी का पर्व भी सुख, समृद्धि एवं अखण्ड सौभाग्य के लिए सम्पन्न किया जाता है। इस पर्व पर पीपल के वृक्ष का पूजन सभी पूजन सामग्री के साथ किया जाता है। कच्चे सूत को वृक्ष के चारों और परिक्रमा करते हुए लपेटा जाता है। वैज्ञानिकों का मत है कि पीपल का वृक्ष सर्वाधिक प्राण वायु प्रदान करता है।

वर्ष प्रतिपदा (गुड़ी पड़वा) हिन्दू नववर्ष का प्रारम्भ पर्व है। इस दिन कड़वे नीम की पत्तियाँ चबाकर खाने की परम्परा है। इसे मिश्री तथा कालीमिर्च के साथ खाने का विधान है। दक्षिण भारतीय परिवारों में घर के ऊपर एक काष्ठ दण्ड पर लोटा रखकर उसपर साड़ी, शक्कर का हार तथा नीम की डाली पर पुष्पहार अर्पित कर टाँगा जाता है। श्रीखण्ड और पूरण पोली का नैवेद्य लगाया जाता है।

गणगौर पर्व लगभग कई प्रान्तों में प्रकारान्तर से मनाया जाता है। फूल पत्ती कलश में सजाकर चल समारोह निकाला जाता है। आम के पत्ते पुष्प का विशेष महत्त्व है। बाग बगीचों में हँसी-ठिठौली कर कन्याएँ तथा महिलाएँ व्रत का समापन करती है। पान के बीड़े का महत्त्व इस पर्व में अधिक है।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का जन्मोत्सव चैत्र रामनवमी के रूप में मनाया जाता है। खड़े धनिये को सेककर उसमे शक्कर मिलाकर, पीसकर पंजेरी नैवेद्य के रूप में अर्पित की जाती है। पुष्प तथा ऋतु फल भी चढ़ाये जाते हैं।

अक्षय तृतीया (आखा-तीज) इस दिन भी अभिजीत मुहुर्त रहता है। अक्षय फल का दान करने से विशेष फल प्राप्त होता है। सत्तू, पंखा, शकर, आम, जल पूरित मटका व खरबूजे का दान किया जाता है।

जून माह में महिलाओं को सौभाग्य में वृद्धि तथा पति की दीर्घायु प्रदान करनेवाला व्रत वट-सावित्री पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। वटवृक्ष की परिक्रमा करते

हुए धागा लपेटते है। आम्र फल तथा चने की दाल अन्य पूजन सामग्री के साथ वृक्ष के नीचे अर्पित की जाती है । चना दाल, आम तथा दक्षिणा से माता पार्वती की गोद पूरित की जाती है।

भेरू पूजन में खाकरे (ढ़ाक) के पत्ते तथा गेहूँ के खिचड़े का विशेष महत्त्व है।

अगस्त सितंबर माह में हरतालिका तीज का पर्व मनाया जाता है। इस व्रत में धतूरा, आँकड़ा, पारिजात, मोगरा, गुलाब, गेंदा, जूही आदि विभिन्न प्रकार के पुष्प तथा आँवला नीबू, अनार, सेवफल, जामफल, सीताफल, चीकू, केले आम आदि फल सहित पत्ते, मौलश्री अशोक, गुडहल, खीरा, भूट्टे, तुरई आदि आदि अनेक फूल पत्ते नारियल सुपारी,डण्डेवाले पान, बादाम खारक, लौंग, इलायची, तथा महिलाओं की सभी सौभाग्य सामग्री, बालू रेत से बनाये जाने वाले शिव परिवार को चार बार पूजन कर अर्पित की जाती है। इस दिन वनस्पति का सर्वाधिक महत्त्व माना जाता है।

हरतालिका तीज के दूसरे दिन दस दिवसीय गणेशोत्सव का आयोजन किया जाता है। आम्रपत्र, मेवे, फल, पान, फूल, गुड़, लड्डू, बाटी, दूर्वा, नारियल, पंचामृत आदि का विशेष महत्त्व है।

ऋषिपंचमी के दिन अरून्धती के साथ सप्तर्षि कश्यप, भरद्वाज, जमदग्नि, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम तथा वशिष्ठ का पूजन किया जाता है। अपामार्ग (आंधी झाड़ा) की डंडियों से सप्तर्षि तथा अरून्धती निर्मित करते हैं। मोरधन (सँवा) का सेवन किया जाता है। अपामार्ग में पत्तों का पूजन में विशेष महत्त्व है। कथा सुनकर व्रत का समापन किया जाता है।

पितृपक्ष पूर्णिमा से श्राद्धपक्ष का प्रारंभ होता है। कन्याएँ सोलह दिन संजा की आकृति दीवार पर निर्मित करती हैं। प्रतिदिन गोबर से नई आकृति का निर्माण किया जाता है। पूजन में गुलतेबड़ी के रंगविरंगे फूल का विशेष महत्त्व है।

शारदीय नवरात्र का प्रारम्भ मातृशक्ति की पूजा का प्रमुख पर्व है। जौ तथा गेहूँ के ज्वारे बोए जाते है। आम के पत्ते, विभिन्न फल गेंदे के फूल, गुलाब के फूल तथा भूरे कद्दू का विशेष महत्त्व है।

इसके बाद बुराई पर अच्छाई का पर्व दशहरा पर्व रावण दहन के साथ मनाया जाता है। बाँस अन्य लकड़ियाँ, तथा रंगीन कागजों से रावण की विशालकाय प्रतिमा का निर्माण किया जाता है। राम की विजय की स्मृति में दर्शकगण शमी के पत्ते तोड़कर लाते हैं। राम मन्दिर में दर्शन कर पत्ते चढ़ाये जाते हैं। घरों में दीप जलाकर गिलकी के भजिये का नैवेद्य लगाया जाता है। सभी एक दूसरे के घर जाकर दशहरे पर्व की शुभकामना देते हैं।

दशहरे के पाँचवे दिन शरद पूर्णिमा का उत्सव मनाया जाता है। चाँदनी रात में दूध या खीर रखकर नैवेद्य अर्पित कर दूध पिया जाता है । आयुर्वेद में इस पर्व का विशेष महत्त्व है। अनेकों जड़ी-बूटियों का मिश्रण कर औषध बना कर श्वास, दमा, मिर्गी, के रोगियों को पिलाई जाती है।

दशहरे के पश्चात् पाँच दिवसीय त्यौहार दीपावली मनाया जाता है। यह धनतेरस से भाईदूज तक रहता है। दीपक पूजन में प्रमुख रूप से गन्ने के टुकड़े, आँवले के टुकड़े, बेर-पोखड़े (ज्वार के दाने) बैंगन, मूली, कपास के बीज, काचरी, साल की धानी, कंकू अमर बेल सिंधाड़े आदि बारीक काट कर दीपक में डाले जाते है।

धन्वन्तरि का पूजन धनतेरस पर किया जाता है। पूजन में खड़े धनिया का उपयोग किया जाता है। अन्नकूट के दिन बैंगन, मूली, मैथी, आलू आदि की मिश्रित सब्जी बनाकर भोग लगाया जाता है। गोवर्द्धन बनाकर पूजते हैं।

यम द्वितीया (भाई-दूज) के दिन बहन भाई को तिलक लगाकर श्रीफल भेंट करती हैं तथा भोजन कराती है।

आँवला नवमी के पर्व पर आँवले के वृक्ष का पूजन सभी सौभाग्य सामग्री के साथ किया जाता है। आँवले के वृक्ष के नीचे भोजन किया जाता है। कथा कथन होता है आयुर्वेद में आँवले से निर्मित च्यवनप्राश का विशेष महत्त्व हैं। और भी औषधियाँ आँवले से निर्मित की जाती हैं। घर में भी भगवान् को आँवला चढ़ाया जाता है।

देवप्रबोधनी एकादशी से उज्जैन शहर में अखिल भारतीय कालिदास समारोह का प्रारम्भ होता है।

जनवरी से दिसंबर तक हमारे सभी तीज-त्यौंहार का सम्पर्क वनस्पति सम्पदा से बना हुआ हैं। हमारी भारतीय महिलाएँ इस हेतु बधाई की पात्र हैं कि उन्होंने इस त्योंहारों के महत्त्व को समझ कर प्राकृतिक सम्पदा को किसी न किसी रूप में जीवन्त बनायें रखा है।

मातृशक्ति ही बालक की प्रथम गुरू होती है और घर से ही प्रकृति व प्राक्रतिक सम्पदा के संरक्षण का बीजारोपण बालक के अंर्तमन में कर सकती है। यही संस्कार भविष्य में हरी-भरी वसुन्धरा के रूप में साकार होंगे।

***

# लेखक का त्याग

वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सन्त चैतन्य महाप्रभु (निमाई पंडित) का गृहस्थाश्रम चल रहा था। वे नाव से कहीं जा रहे थे। उनके हाथ में अपनी लिखी न्यायशास्त्र संबंधी पुस्तक की पाण्डुलिपि थी। नाव पर उनके बालसखा रघुनाथ पंडित भी थे। बातचीत में ग्रन्थ की चर्चा चल पड़ी। निमाई पंडित (चैतन्य) अपनी पुस्तक के अंश सुनाने लगे। अंश सुन-सुनकर रघुनाथ का दुःख बढ़ता गया। निमाई पंडित ने कारण पूछा तो वह बोले- 'भाई, मैंने बड़े परिश्रम से 'दीधिति' नामक न्याय-विषयक ग्रन्थ लिखा मगर तुम्हारे ग्रन्थ के सामने मेरी पोथी बेकार है? इसी वेदना से मुझे दुख हो रहा है।'

निमाई पंडित ने मुस्कराते हुए कहा- 'इस साधारण-सी बात से तुम दुखी हो मित्र! तुम्हारे सुख के लिए मेरे प्राण भी प्रस्तुत हैं, इस पोथी का क्या है?', यह कहकर निमाई पंडित ने वर्षों की साधना से तैयार अपना न्याय-विषयक ग्रन्थ गंगा में बहा दिया- "जिस कार्य से कोई व्यक्ति दुःखी हो वह नहीं करना चाहिए।" रघुनाथ पंडित का दीधिति ग्रन्थ आज भी श्रेष्ठ है।

*-श्री सुरेन्द्र अग्निहोत्री*
*ए-305 ओसीआर बिल्डिंग, विधान सभा मार्ग, लखनऊ 226001*

चित्र : श्रीमती आरती मिश्र

# बाँस : वंश का प्रतीक

बाँस (Bamboo) को वंश का प्रतीक माना जाता है। मिथिला में मुण्डन तथा उपनयन के बाद कटा हुआ केश सन्ध्याकाल में बाँस की जड़ में फेंका जाता है। मान्यता है कि इससे वंश की वृद्धि होती है। इसी क्रम में बाँस को बेचने की भी मनाही है। 'सरोज-सुन्दर' अपर नाम 'स्मृतिसारसमुच्चय' में कहा गया है कि जो बाँस बेचकर खाते हैं वे अनी बेटी की कमाई क्यों न खाते हैं! बाँस को लोकोपकार हेतु निःशुल्क देने की बात कही गयी है। इसी सन्दर्भ में विवाह के क्रम में कोबर-घर, जहाँ विवाह के तुरत बाद वर-वधू को रखा जाता है, उसकी दीवाल पर बाँस का अंकन होता है। मान्यता है कि इसके दर्शन से वर-वधू का गार्हस्थ्य जीवन सुखमय होगा तथा वंश की वृद्धि होगी। लगभग 30 वर्ष पहले तक उस कमरे की दीवाल पर अलग से बाँस का अंकन होता था, किन्तु अब कोबर घर के सभी अंकन को एक बड़े कैनवास या कागज पर चित्रकार के द्वारा अंकित किया जाता है। इस पूरे पेंटिंग को कमरे में लगा दिया जाता है।

# पर्यावरण पर भारतीय चिन्तन और वृक्षपूजन

**डा. श्रीकृष्ण जुगनू**

लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्रीकॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान), राजस्थान,

**एक बहुप्रचलित शब्द है- 'लोक-वेद', जो शास्त्र एवं लोक का समन्वय प्रस्तुत करता है। हमारे पूर्वजों ने शास्त्र की पंक्तियों को किस रूप में पहचाना इसे समझने के लिए हमें लोक को देखना होगा। यदि हम पूर्वाग्रह से मुक्त होकर लोकपरम्परा को देखें तो स्पष्ट होगा कि शास्त्र का ही वह दृश्यमान प्रवाह है। वृक्ष-पूजा के सन्दर्भ में तो इसे अधिक दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है। लेखक राजस्थान के क्षेत्र के हैं। इन्होंने शास्त्र के रूप में वृक्षायुर्वेद पर विशेष अध्ययन किया है। इसके कतिपय मूल ग्रन्थों का सम्पादन तथा अनुवाद करने का श्रेय इन्हें जाता है। दूसरी ओर इन्होंने अपने क्षेत्र की लोक-संस्कृत का अध्ययन कर दोनों के समन्वयात्मक रूप का अवलोकन अनेक सन्दर्भों में किया है। ये कतिपय सन्दर्भ यहाँ संकलित हैं, जो राजस्थान के क्षेत्र में वृक्षपूजा से सम्बन्धित 'लोक-वेद' को निरूपित करते हैं।**

पर्यावरण पर भारतीय ऋषि चिन्तन बहुत गंभीर रहा है। आवास से लेकर प्रवास और मनुष्यालय से लेकर देवालय तक पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन पर जोर दिया गया है। पर्यावरण के लिए वन, वायु और वृष्टि की निरंतरता पर जोर दिया गया है– इसका जीता जागता नमूना 'वृक्षायुर्वेद' की धारणा है। वृक्षायुर्वेद शब्द सबसे पहले अर्थशास्त्र में 'गुल्म वृक्षायुर्वेद' के नाम से मिलता है और यह वह विद्या थी जो सुकाल की साधना के रूप में राजाश्रय में प्रतिफलित थी।

इसी पर बाद में सारस्वत मुनि ने 'दकार्गल' नाम से ग्रन्थ लिखा जो जलविद्या पर आधारित था। वराहमिहिर के काल तक यह ग्रन्थ मौजूद था। उसने इसके कई श्लोकों को आर्याच्छंद के रूप में लिखा और उन्हीं मूल श्लोकों को भटोत्पल ने 9वीं सदी में अपनी विवृति में उद्धृत किया। यही ग्रन्थ 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में एक अध्याय के रूप में संपादित किया गया।

दसवीं सदी में सूरपाल ने वृक्षायुर्वेद का संपादन किया और फिर, इस ग्रन्थ की विषय वस्तु को आधार बनाकर अग्निपुराणादि ने दो-दो अध्याय लिखे। गर्गादि संहिताओं में इस विषय को संपादित किया गया। वृक्षायुर्वेद का संपादन, अनुवाद करते समय, 2004 में भूमिका में मैंने इस सभी विषयों का खुलासा किया और माना कि भारतीयों ने पर्यावरण पर बड़ा जोर दिया।

राजाश्रय में पर्यावरण के संरक्षण पर प्रयास किया गया। महाराणा प्रताप के काल में लिखित 'विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेद' इसका जीवंत उदाहरण है। इसमें पर्यावरण के मूलाधार वृक्ष, वृष्टि और वायु पर पर्याप्त और वैज्ञानिक विचार प्राप्त होता है।

यह अकाल का सेतु है मगर इसके लिए संसाधनों के न्यूनतम दोहन पर जोर दिया गया। हमारी जरूरतें सीमित हों और प्रकृति का विकास भरपूर हो, हम प्रकृति के संरक्षण के लिए क्या कुछ कर सकते हैं, यह चिन्तन इन ग्रन्थों में दिया गया है। हमें पर्यावरण चिन्तन के लिए किसी भी बाहरी विचार को ग्रहण करने की जरूरत नहीं, हमारे अपने ग्रन्थों का चिन्तन ही पर्याप्त है।

## आलवाल : पेड़ का सुरक्षा चक्र :

लोक जीवन में आदरणीय वृक्षों की सुरक्षा के लिए जो उपाय किए जाते हैं, उनमें थाला बनाना मुख्य है। थाला यानी आलवाल! संस्कृत में आलवाल शब्द ही मिलता है और वृक्षायुर्वेद, उपवन विनोद, वृक्षोत्सर्गविधि, वाटिका विधि, द्रुमरंजन, विश्ववल्लभ, वृक्षायुर्ज्ञान, जैसे अनेक ग्रन्थों में आलवाल के सन्दर्भ आए हैं। आज पेड़ बहुत लगते हैं लेकिन थाले कितने पेड़ों के बनते हैं? थाले पेड़ों के आश्रय, भुजबल जैसे होते हैं।

आलवाल बनाकर वृक्षों की सुरक्षा करने, आलवाल में ही पानी, खाद और पोषक कुणप जल ( विशिष्ट तरल खाद), कीट आदि लगने पर वायविडंग आदि देने के निर्देश अनेकत्र मिलते हैं। थाला एक प्रकार से वृक्ष के आहार करने की थाली है। यह वृक्ष भोजन पात्र है। यहाँ दिए जल आदि के आधार पर वृक्ष की व्याधि का अनुमान लगाया जाता :

आलवाल : पेड़ का सुरक्षा चक्र

**आलवाले स्थितं तोयं शोषं न भजते यदा।**
**अजीर्णं तद्विजानीयान्न देयं तादृशे जलम्॥**

*(वृक्षायुर्वेद 4, 4 और श्रीकृष्ण "जुगनू", भूमिका)*

बौद्ध और उत्तरकालीन जो शिल्प मिले हैं, उनमें पीपल आदि के थाले, सुंदर आलवाल बने दिखाई देते हैं। थाला त्रिकोण, वृत्त, चौकोर, पंचकोण आदि आकारों में बनते हैं। तुलसी आदि के लिए क्यारे स्तंभाकार बनाए जाते हैं। कई बार ऐसे आलावाल वाले पेड़ों के पास चबूतरे का विकास कर दिया जाता है और खेल, बातचीत आदि की गतिविधियाँ शुरू हो जाती हैं। यह चौरा भी कहा जाता है और चत्वर भी।

## नक्षत्र आधारित पेड़-पौधे

पेड़-पौधे फल-फूल ही नहीं देते, श्वसन क्रिया में सहायक भी हैं और व्यक्ति के जन्म नक्षत्र के अनुसार फलदायक भी सिद्ध होते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि भारत ने कभी पेड़ काटने में विश्वास नहीं किया बल्कि पेड़ लगाने, पेड़ बचाने और वनों को पनपाने में भरोसा किया है।

वृक्ष विद्या को वृक्षवेद के समान आदर प्राप्त है। हमारे पास वृक्षार्णव, वृक्षवेद, वृक्षायुर्वेद, वृक्षोत्सर्ग, वृक्षप्रतिष्ठाविधि... जैसे

अनेक ग्रन्थ हैं जो इस विद्या के धारक हैं। लेकिन, बौनसाई पेड़ बनाने की मनाही है। बोनसाई से मन और मस्तिष्क का विकास रुकता है, वृक्षों पर मेरे किए प्रयोग इस बात की पुष्टि करते हैं, विशेषकर महिला के लिए। ये घरों में तो नहीं ही हों। हां, आपका कोई अनुभव हो तो आप शेयर करें।

नारदपुराण और हमारी संपादित राजवल्लभ, वास्तु प्रदीप, मनुष्यालयचंद्रिका, वास्तुरत्नावली, वास्तुविद्या आदि में इस पर विशेष विमर्श किया गया है।

जिस नक्षत्र का जो पेड़ है, उसका विवरण इस प्रकार है :

| सं. | नक्षत्रनाम | वृक्ष | वानस्पतिक नाम |
|---|---|---|---|
| 1 | अश्विनी : | कुपिलु/कुचला- | Strycnous nuxvomica |
| 2 | भरणी : | आमलकी/आंवला | phyllanthus embilica |
| 3 | कृतिका : | गूलर - | Ficus glomerata |
| 4 | रोहिणी : | जामुन- | Syzygium cumini |
| 5 | मृगशिरा : | खदिर/खैर- | Acacia catechu |
| 6 | आर्द्रा : | शीशम- | Dalbergia sisso |
| 7 | पुनर्वसु : | वंश/बांस- | bamboo |
| 8 | पुष्य : | पीपल- | Ficus religiosa |
| 9 | आश्लेषा : | नागकेसर- | Mesua ferrea |
| 10 | मघा : | बरगद- | Ficus bengalensis |
| 11 | पुर्वा फाल्गुनी : | पलाश/ढ़ाक- | butea monosperma |
| 12 | उत्तरी फाल्गुनी : | प्लक्ष/पाकड़- | Ficus lacor |
| 13 | हस्त : | रीठा | Sapindus mukorossi |
| 14 | चित्रा : | बिल्व/बेल - | Aegle marmelos |
| 15 | स्वाती : | अर्जुन- | Terminalia arjuna |
| 16 | विशाखा : | विकंकत/कटाई- | Flacourtia indica |
| 17 | अनुराधा : | बकुल/मौलश्री- | Mimusops elengi |
| 18 | ज्येष्ठा : | शाल्मली/सेमल- | Bombax ceiba |
| 19 | मूल : | शाल- | Shorea robusta |
| 20 | पूर्वाषाढ : | वेतस | Salix caprea |
| 21 | उत्तराषाढा : | कटहल/ | Artocarpus heterophyllus |
| 22 | श्रवण : | अर्क/मदार- | Calotropis procera |
| 23 | धनिष्ठा : | शमी- | Procopis ceneria |
| 24 | शतभिषा : | कदम्ब- | Anthocephlous cadamba |
| 25 | पूर्वा भाद्रपद : | आम- | Mangifera indica |
| 26 | उत्तरा भाद्रपद : | नीम- | Azadiracta indica |
| 27 | रेवती : | महुआ- | Madhuca longifoli |

## पीपल का वृक्ष

पीपल का पेड़ भारतीय मूल का है और प्राणवायु से लेकर लाख तक का दाता होने से देवता है। मानवीय चेतना में पहला देवता पेड़ को ही समझा गया और मानव ने प्रथमत: पेड़ के आगे अपना याचक रूप पेश किया। सिलोन, कंबोडिया से लेकर जावा, सुमात्रा तक इस वृक्ष के प्रति श्रद्धा लगभग डेढ़, दो हज़ार साल से है। यहाँ वहां बच्चा बच्चा जानता है कि यह पेड़ ज्ञान देता है, ध्यान देता है, वरदान देता है, सम्मान देता है।

ठेठ गंवई भाषा के भाव है :

**पीपल पूजे परणैती भर भर मोत्यं थाल।**
**दु:ख, दोष, दोरमो, तीनू कानी टाल॥**

पीपल का फैलना, फलना और फूलना सब शुभ है। पीपल पर्यावरण का अंग है। इससे पर्यावरण है। इसकी लाख ने रंग दिया, महावर दिया, चूड़ियों की गोलाई से सपनों वाले सुहाग का संसार दिया। जब से नारी मन ने लाल और लाह को चाहा, पीपल ने उसकी कामना में रंग भरे। लाख ने लाखों की चपड़ी होकर अपने सीने पर मुहर लगवाई है।

यह बोधिवृक्ष है। विष्णुवृक्ष है। सर्वलोक में मंगलकारी वृक्ष है। वृक्षायुर्वेद, सस्य वेद में पीपल की महिमा है। यह अश्वत्थ नाम से गीता, भागवत, ब्रह्म पुराण, स्मृतियों और बौद्ध, ब्राह्मण ग्रन्थों में स्मरणीय है। कल्पलता विचार और वनस्पति जातक के रूप में इस वृक्ष की गतिविधियों का अध्ययन हुआ है। मैंने इसके लगभग तीन सौ सन्दर्भ देखें हैं। हालांकि अधिकांश परस्पर समान और सामान्य है।

पीपल को श्रीलंका आदि में ले जाकर बोधिवृक्ष के रूप प्रचारित करने के प्रसंग को पारिजात, कल्पवृक्ष, कोविदार आदि के आख्यानों से जोड़कर देखना चाहिए। पेड़ पहले परस्पर लाए और ले जाए जाते थे। लोग अपना काम करके लौट आते लेकिन पेड़ अपना काम करते रहते। दो हज़ार साल पहले ही लोग जान चुके थे कि पेड़ लगाने से उद्देश्य स्थाई और सफल होते हैं।

यह भी देखिए, लोक में पीपल देवी है। पीपल की भी देवी है पीपलाज माता। पिप्पलाद के आख्यान है। पीपल की अनेक लोक कथाएँ हैं, लोक वार्ताएँ हैं, लोकगीत हैं... इनको कहने, सुनने और पढ़ने, पढ़ाने से पुण्य से ज्यादा अन्न, धन, लाव लश्कर और राजपाट, वैभव होता है... और क्या चाहिए?

## पूर्णिमा पेड़ों की

वैशाखी पूर्णिमा हम पीपल पूजन पर्व के रूप में मनाते हैं और ज्येष्ठ पूर्णिमा बरगद की पूजा के साथ। नारियली पूर्णिमा, ताड़ पूर्णिमा आदि भी मनती हैं। अधिकांश पर्व पेड़ों और उनके फलने फूलने के साथ जुड़े हैं।

पेड़ों के पूजने के पीछे आरंभिक धारणा यह थी कि वे अच्छे फले और फूले ताकि कृषि की अच्छी पैदावार हो। बादरायण ने इस पर पर्याप्त विचार किया था और फल कुसुम के अनुसार धान्योत्पादन का पूर्वानुमान लगाने का मत दिया था। वटवृक्ष के फलने पर जौ धान्य की अच्छी पैदावार होने और पीपल के फलने पर सभी प्रकार के धान्यों की अधिक पैदावार का संकेत मिलता था।

मैंने संहिता जैसे ग्रन्थों और वृक्षायुर्वेद के लगभग 12 पाठ तैयार करते हुए यह पाया कि कृषि के विकास की कामना के साथ नारियों ने अपने सुख, सौभाग्य के चिरायु होने का भी अभिमत रखा। पर्व और व्रत के मूल में सदियों के अनुभव संचित होते हैं।

वट पौर्णिमा अथवा वट सावित्री की पूर्णिमा अनेक ज्ञान पक्षों को लिए है : बड़ी पूनम, बड़ा पेड़ का मत तो सामान्य है ही। आदरणीय शिशिर भाई जी, सौ. प्राची मामलकर, सौ. राधिका जी आदि ने वट पूर्णिमा पूजन की जानकारी दी तो मन हुआ कि वृक्ष पूजन के इस पर्व के बारे में जाना जाए। शिशिर भाईजी बताते हैं कि वृक्ष कुल में वट या बड़ का वृक्ष की उम्र हज़ारों वर्ष की होती है। इसकी जड़ जटाएँ फैल कर इसे घना बनाती रहती हैं। पर्यावरण के लिए यह श्रेष्ठ वृक्ष है। इसमें सैकडों प्रजाति के पंछी घोंसला बना कर रहते हैं। इसके नीचे सन्त पुरुष आश्रम बना कर रहते हैं।

बारहों मास हरा रहने वाला यह वृक्ष माटी का भी संरक्षण करता है। आज के दिन भारतीय नारियाँ अपने सुहाग अर्थात पति की लंबी उम्र के लिए वृत रख कर इस पवित्र वृक्ष के फेरे लगाकर पूजा करती हैं। अखण्ड सौभाग्यवती होने का आशीष मांगती है। इसे अक्षय वट भी कहते हैं। इसमें देवताओं का वास भी माना जाता है। ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन सावित्री अपने पति सत्यवान को यमराज से वापस लेकर आई थी।

## जहँ पीपल तहँ तिय परिणीता...

### दशामाता पर्व

मेवाड़-वागड़ में चैत्र कृष्णा दशमी को दशामाता पर्व के रूप में मनाया जाता है। यह पीपल पूजा का दिन है। इस अवसर पर नल राजा दमयंती रानी की कहानी कही सुनी जाती है जिसमें दशा के कुदशा होने पर मिले फल और सुदशा होने पर बेहतर परिणाम की चर्चा होती

है। यह कथा जितनी पुरानी, उतना ही पुराना यह व्रत। महाभारत में यह कथा पुराने आख्यान के रूप में अाई है।

वयोवृद्ध महिलाओं से लेकर नव ब्याहताओं द्वारा भी यह व्रत किया जाता है। सास नव वधू को यह व्रत दिलाती है। सुख, सुहाग और समृद्धि की कामना इसके मूल में है। कहीं कहीं पुरुष केवल व्रत रखते हैं। महिलाएँ तो निर्जल, निराहार ही पूजा करती है :

**जहँ पीपल तहँ तिय परिणीता।**
**व्रत धरी कथा सुनहु बहुप्रीता॥**

सुबह सुबह जागकर महिलाएँ पीपल को निवेदित करने को हल्दी मिलाकर गूथे गए आटे के गहने बनाती हैं और फिर कुमकुम, मेहंदी, कच्चे सूत, वलय वगैरह सुहाग सामग्री सरीखा थाल सजाकर पीपल पूजने जाती है।

गीतों के गान, वारताओं के बखान, बुजुर्गों के सम्मान के संकल्प के बीच पीपल की छाल का कुछ टुकड़ा घर लाकर कुमकुम के पंचांगुलिक थापे के साथ

ही देव के आले में विराजमान करती हैं। यह दशा की साधना भी है और प्रतिष्ठा भी। कितनी रोचक परंपरा है, पीपल पूजने से क्या होता है ? गीत में गाया जाता है :

**पीपळ पूजां कांई फल मिलसी,**
**अन होसी, धन होसी,**
**पूतां रो परिवार होसी,**
**सायब जी रो राज होसी,**
**अपरौ सन्मान होसी,**
**लाव होसी, लसकर होसी,**
**हाथी हजार होसी, घोड़ा घूम्मतदार होसी,**
**उठो रानी रुकमण पूजौ दसामाता...**

पेड़ पूजन से यह सब मिलता है ? यह यकीं क्यों नहीं होता। सारा वैभव ही वर्षा, वायु और वनस्पति का अवदान है। हां, यदि हर पेड़ पूजा जाने लगे तो ! तो क्या, नौ आनंद हो जाए। विचार करें और बतायें कि आपके आसपास वृक्ष पूजन की कौन-सी परंपरा है ?

## वटसावित्री व्रत की परम्परा

वट सावित्री व्रत की परंपरा के विषय में श्रीअत्रिजी विक्रमार्क का मत है कि भारतीय स्त्रियाँ ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी से अमावस्या तक अखंड सौभाग्य के लिए वट सावित्री व्रत करती हैं। वृक्षों से जुड़े व्रतों और उत्सवों में यह बहुत पुराना है जिसकी प्रतिष्ठा महाभारत आदि में भी मिलती है।

कोई व्रतार्थी स्त्री यदि तीन दिन का व्रत नहीं रख सकती तो त्रयोदशी को रात्रि भोजन, चतुर्दशी को अयाचित तथा अमावस्या को उपवास प्रतिपदा को व्रत का पारण करना चाहिए। अमावस्या को एक बांस की एक टोकरी लेकर उसमें सप्त धान्य (उड़द, मूंग, गेहूं, चना, जौ, चावल और बाजरा) के ऊपर ब्रह्मा जी एवं ब्रह्मसावित्री तथा दूसरी टोकरी में सत्यवान तथा सावित्री की प्रतिमा स्थापित कर वटवृक्ष के नीचे रख कर पूजन करना चाहिए। पूजन के साथ वटवृक्ष को जल दिया जाता है और उसकी परिक्रमा करते हुए सूत लपेटा जाता है :

**ॐ नमोऽव्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे।**
**महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते॥**
**अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चायतनं वट।**
**न्यग्रोध हर में पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥**

'अव्यक्तस्वरुप महाप्रलयकारी एवं महान रससे युक्त आप वटवृक्ष को नमस्कार है। हे वट! आप प्रत्येक कल्प में अमर है। आप मे भगवान श्रीहरि का निवास है। न्यग्रोध! मेरे पाप हर लीजिये। कल्पवृक्ष! आपको नमस्कार है।'

ज्येष्ठ मास, महीनों में बड़ा महीना, वृक्षों में बड़ा वृक्ष और व्रतों में बड़ा व्रत! अमावस्या तिथि पर स्त्रियों द्वारा व्रत रखकर वट वृक्ष के पूजन, सेचन, सूत बन्धन

किया जाता है। इस दिन की विशेष बात यह है कि स्त्रियाँ कच्चे सूत से यज्ञोपवीत बनाती है। उसे हल्दी से रंगकर धारण करती हैं। इस तरह यह डोरक व्रत (सूत सिद्ध) भी है।

## कहानी की कहानी :

इस व्रत में परंपरा से मद्र देश के राजा 'अश्वपति' (मद्र, केकय, सिन्धु, गांधार आदि देशों का ही राजा "अश्वपति" हो सकता है) की पुत्री सावित्री और सत्यवान की कथा कही सुनी जाती है। इसमें आता है कि किस प्रकार सावित्री ने तीन दिन निराहार रहकर और यमराज के पीछे पड़कर अपने हठ और चातुर्य से उसकी बुद्धि तक को चकरा दिया और फिर उससे चार वर माँगकर सब अभीष्ट प्राप्त कर लिये।

इस कथानक का यम-नचिकेता के आख्यान से भी साम्य है. नचिकेता (कश्मीरी भाषा के आलोक में नचिकेता का अर्थ नवीन ध्वज होता है) भी यमराज की प्रतीक्षा में तीन ही दिन निराहार रहे थे।

इस परम्परा में ऐसा आभास मिलता है कि अमावस्या तिथि युद्ध के लिये प्रशस्त मानी गई है। इस दिन पुरुषों को युद्ध के लिए विदा देते समय किसी वट (अश्वत्थ, ब्रह्म) वृक्ष के नीचे अश्वों सहित एकत्र दल को स्त्रियों द्वारा अपने पतियों का तिलक, पूजन आदि किया जाता रहा है। सूर्योदय कालीन 'सावित्री' और 'वट' का संगम होने से ही यह 'ब्रह्म सावित्री' व्रत हुआ। ग्रीष्म ऋतु को अंग्रेजी में 'समर' कहते हैं। युद्धकार्य के लिये उपयुक्त होने से ही कदाचित् युद्ध के लिये समर शब्द व्यवहृत हुआ!

## व्रत की संक्षिप्त विधि :

ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को प्रातः स्नानादि के पश्चात् **"मम वैधव्यादि-सकलदोषपरिहारार्थं सत्य-वत्सावित्री-प्रीत्यर्थं च वटसावित्री व्रतमहं करिष्ये।"** कर नाम, गोत्र, वंश आदि के साथ उच्चारण करते हुए। सहित संकल्प कर तीन दिन उपवास करें। अमावस्या को उपवास कर के शुक्ल प्रतिपदा को व्रत समाप्त करें। अमावस्या को वट वृक्ष के समीप बैठ कर बांस के एक पात्र में सप्त धान्य भर कर उसे दो वस्त्रों से ढक दें। दूसरे पात्र में सुवर्ण की ब्रह्म सावित्री तथा सत्य सावित्री की प्रतिमा स्थापित कर के गंधाक्षतादि से पूजन करें। तत्पश्चात् वट वृक्ष को कच्चे सूत से लपेट कर उस वट का यथाविधि पूजन कर के परिक्रमा करें।

इसके बाद

**अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते।**
**पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**

इस श्लोक को पढ़ कर सावित्री को अर्घ्य दें और

**वट सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः।**
**यथा शाखा-प्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं महीतले।**
**तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च सम्पन्नं कुरु मां सदा॥**

इस श्लोक को पढ़कर वटवृक्ष से प्रार्थना करें। देश-देशांतर में मत-मतान्तर से पूजा पद्धति में विभिन्नता हो सकती है। परंतु भाव सबका एक ही रहता है, जो यमराज द्वारा सावित्री को प्रदत्त वरदान या आशीर्वाद है। इसमें भैंसे पर सवार यमराज की मूर्ति बना कर भी पूजा का विधान है। सावित्री कथा का भी श्रवण करें।

## ब्याह वट और पीपल का

*[मरुभूमि में रोचक परंपरा]*

बैसाखी पूनम को लोकजीवन में पीपल पूनम भी कहा जाता है। इस दिन राजस्थान में पीपल और बरगद का ब्याह होता है और यह उत्सव किसी शादी समारोह से कम नहीं होता। मत्स्य पुराण, आग्नेय, भविष्योत्तर पुराण में वृक्षारोपण की लोक परंपराओं के अध्याय आए हैं लेकिन विवाह की रस्म क्षेत्रीय रही हैं। कार्तिक में तुलसी विवाह और वैशाख में पीपल पाणिग्रहण! यह ताज्जुब होगा कि घट विवाह और खेजड़ी विवाह जैसे रिवाज विलंब को टालनेवाले टोटके रहे हैं।

मरुभूमि वाले पेड़, छाया और उसके महत्त्व को आत्मिक रूप से अनुभव करते हैं और वृक्षों की सुरक्षा के लिए अपने दायित्व को जानते हैं। इसी कारण पीपल और बरगद को चिर परिचित मानकर उनके पाणिग्रहण की रस्म करते हैं। पीपल मंगल की यह रीति कई समाजों में प्रचलित है। (विशेष : राग रंग और शृंगार)

यह रस्म वैशाखी पूर्णिमा को होती है। ऐसी ही एक वैवाहिक रस्म मारवाड़ के थोब गाँव में हुई और बड़ी संख्या में श्रद्धालु सहभागी हुए। भगवती स्वरूपा किरण राजपुरोहित ने बताया कि कहने को यह एक छोटा सा अनुष्ठान होता है लेकिन इसके लिए वर और वधू पक्ष जैसी तैयारियाँ होती हैं। भात (माहेरा) भरा जाता है। पीपल बाईसा और बड़ जवांई साहब के लिए साफा, साड़ी जैसे वस्त्र, सरोपाव, माला, हार लड़ी, कांकड़ डोरेड, मोड़, पाग, पेच से लेकर घर गृहस्थी का सारा सामान भेजा जाता है।

पीपल बाईसा को सुंदर से गमले में सजाया जाता है। बिलकुल दुलहन की तरह। गमले रूपी पालकी पर विराजी पीपल बाईसा को बड़ के समीप लाकर बिठाया जाता है। दोनों के बीच निचोल बंध (गल जोड़ा) होता है और विवाह की रस्म होती है। माहेरा, सामेळा, वर को टीकना, फेरे और फिर विवाह की कथा। माता-पिता चंवरी में सामने बैठे पाणिग्रहण की रस्म। महिलाओं के कंठ से लोक स्वर फूटते हैं। गाँव की बडीपोल के चौहटे में समस्त गाँववासियों के बीच बड़ बींदराजा को सासूजी द्वारा टीकाकरण। सलहज ने झळामल आरती उतारी जाती है।

इस स्थावर वैवाहिक रस्म में यह भी देखने को मिला :

जिस पीपल की शादी होती है, वह कम उम्र का पेड़ होता है।

बरगद की आयु भी कम ही होती है। दोनों को सजाया जाता है।

इस पाणिग्रहण के बाद इन पेड़ों के जोड़ों के आसपास या किसी एक के पास किसी व्रत की कथा कही या सुनी जा सकती है।

नियमानुसार इनको पाला पोसा जाता है। अकसर पीपल को किसी अच्छे मंदिर या जल स्थान पर लगा दिया जाता है।

भारत की लोक परंपराएँ अनोखी हैं। कहीं मेढ़क-मेढ़की विवाह रचाया जाता है तो कहीं श्वान, कहीं गुड्डे गुड्डी, कहीं दोसकी चिड़िया तो कहीं देवालयों की परंपराएँ हैं! उत्सर्ग और लोकार्पण को भी विवाह जैसा ही माना गया है।

## चौरा की रचना : पेड़ की साक्षी :

देहात की अपनी परंपराएँ और नियोजनाएँ होती है। किसी सामूहिक मुद्दे, मसले पर विचार करने और सह निर्णय के लिए जन जातीय इलाकों, लोकांचलों में जो जगह तय होती है, वह हामेती (सहमति, समिति) और उसमें राय रखने वाले गमेती या गामेती होते हैं।

जगह पर कुलगत आस्था का सूचक पेड़ होता है। यह नीम, लिसौड़ा, पीपल, बरगद, करंज आदि का हो सकता है। पेड़ वही होगा जो ग्राम्य वृक्ष हो, जंगली पेड़ नहीं। जैसे कि इमली, जिसके नीचे बैठने से सुस्ती आती है। इसलिए वृक्ष सचेत रखे, चैतन्य रखे। वह चैत्य वृक्ष इसीलिए कहलाता है। इसे कोई काटता नहीं। काटने की मनाही होती है, जरूरी होने पर छंटाई हो सकती है।

शास्त्रों में चैत्य वृक्ष का नाम मिलता है और उसे श्मशान का पेड़ लिखा जाता है जबकि असल में वह समूह के बैठने व निर्णय के साक्षी होने से महत्त्व का है और इसीलिए अकाट्य है। पेड़ की गवाही जैसा आख्यान और मुहावरा भी तो है। वास्तु में लकड़ी के चुनाव के प्रयोजन से चैत्य वृक्ष के काटने का निषेध किया गया है। चाणक्य आदि ने चैत्य से कृत गतिविधियों का जिक्र किया है। *(अन्य सूचनाएँ : मेरी समरांगण सूत्रधार, विश्वकर्मा संहिता, प्रमाण मंजरी, देवालय चंद्रिका आदि)*

पेड़ की छाया के नीचे आलवाल की तरह विस्तृत जगह बैठकी है। यहाँ एकी-बेकी, गंगाजली उत्थापन, शपथ, देव चौखट गमन, जल संकल्प आदि विधियों से सामाजिक पक्षों पर निर्णय आदि होते हैं। अधिक समय नहीं हुआ, जब चौरों या चवरों का इतना सम्मान था कि कोई उस पर जूते पहने नहीं जाता। यकीन नहीं होता है कि नारियाँ उधर से गुजरती तो पर्दा रखती।

मनुस्मृति ने ग्रामों के सन्धिस्थल पर पेड़ लगाने को कहा है। कुछ खास नाम भी दिए हैं और सीमा विवाद होने पर जेठ मास में निस्तारण का निर्देश दिया है! ग्यारहवाँ अध्याय ऐसे अनेक प्रसंग लिए हैं और सबके सब पुरानी बातों को दोहराते लगते हैं। एक प्रकार से यह प्रणाली गण व्यवस्था की सूचक है और इसकी जड़ें बहुत गहरी और हरी है।

***

# बड़ा कौन ?

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो अल्पबुद्धि शिष्यों में गया कि उन दोनों में बड़ा (विद्वान) बात पर विवाद छिड़ वे दोनों स्वयं को एक दूसरे से बड़ा बता रहे थे। जब स्वामी जी को यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने उन दोनों को बुलाया, उनसे पूरी बातें सुनी और फिर कहा,'इस विवाद का निराकरण तो बहुत सरल है। तुममें से जो कौन है?इस दूसरे को बड़ा माने और कहे वही बड़ा है।' फिर क्या था? दोनों शिष्य अब एक-दूसरे को ही 'बड़ा' कहने और मानने लगे।

*-श्री सुरेन्द्र अग्निहोत्री*

*ए-305 ओसीआर बिल्डिंग, विधान सभा मार्ग, लखनऊ 226001*

# वृक्ष एवं हिन्दी साहित्य के कतिपय सन्दर्भ

**डा. राजेन्द्र राज**
स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना- सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार),

**लोक एवं वेद के सन्दर्भ में पूर्व के आलेखों में हम वृक्ष एवं उनकी महिमा का वर्णन देख चुके हैं। इससे हिन्दी का साहित्य भी अछूता नहीं रहा है। भौतिक दृष्टि से देखें तो वृक्ष सब कुछ सहन कर मानव एवं मानवता के लिए समर्पित है। वह परोपकार, विनम्रता, दृढ़ता, संवेदनशीलता -सबका साकार रूप है। जब वृक्षों पर फल लद जाते हैं तो वे झुककर हमें वैभव के दिनों में भी नम्रता का पाठ पढ़ा जाते हैं। छायादार विशाल वृक्ष विभिन्न चिड़ियों का आश्रय होता है, वह किसी के साथ कोई भेद नहीं करता, सबको अपना बना लेता है। वह भले गगनचुम्बी क्यों न हो जाये, अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है। हिन्दी के साहित्यकारों ने वृक्ष पर आधारित अनेक सूक्तियों की रचना कर मानव को दिशानिर्देश दिया है, जिनमें वृक्ष की गरिमा की झलक हमें मिल जाती है। ऐसे कतिपय सन्दर्भ यहाँ प्रस्तुत हैं।**

यजुर्वेद में पृथ्वी माता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए हमारे ऋषियों ने कहा है कि यह हमारी माता के समान है। हमारा पालन-पोषण यह उत्तम रीति से करती है। हम कभी भी तुम्हारी हिंसा अर्थात् दुरुपयोग न करें– **"पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम्।"** (यजुर्वेद : 10.23.)

धरा के आभूषण और मानव समाज के सच्चे हितैषी प्राचीन काल से रहे हैं,जहाँ हमने तप, साधना और नीरव वातावरण में चिन्तन किया। इस चिन्तन के फलस्वरूप विश्व में वसुधैव कुटुम्बकम्-जैसे मानवतावादी दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। चिन्तन की इस प्रणाली में हर एक जीव जन्तुओं और वनस्पतियों की चिन्ता की गई। आध्यात्मिक रूप में यह एक प्रकार से पारिस्थितिक प्रणाली को वैज्ञानिकता के साथ सन्तुलित करने का उपाय रहा, पर्यावरण के ताप को सन्तुलित तथा भूमि की नमी को बचाने की अनवरत चेष्टा रही। सैंधव सभ्यता में पेड़ों और पत्तियों की आकृतियाँ देखने को मिली हैं।विभिन्न पेड़-पौधों से शीतल छाया के साथ फल-फूल मिलते हैं; उपस्करों का निर्माण होता है। प्रत्यक्ष रूप में लकड़ियां, ईंधन, छालबेंत, तारपीन, चन्दन रबर आदि प्राप्त करते हैं। सच तो यह है कि इन वृक्षों और वनस्पतियों से मनुष्य का जीवन सुरक्षित है। जंगलों के पास रहने वाले कुटीर उद्योग से आजीविका चलाते हैं। अगर वनस्पति नहीं होते तो

पृथ्वी पर रेगिस्तान होता। आक्सीजन जिसे प्राणवायु कहा जाता है, वह तो पेड़-पौधों से मिलता है। भगवान शंकर के समान हलाहल को ये अपने पास रख लेते है। अर्थात् यह सर्वविदित है कि विषैले वायु का अवशोषण वृक्षों एवं पेड़-पौधों के द्वारा हाता है। हमारे भीतर सकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह होता है। घर के आँगन से ले कर बाहर तक वनस्पति हमारे जीवन की रक्षा करते हैं। शान्त और सुरमय वातावरण की सृष्टि करते हैं। वटवृक्ष और पीपल के विषय में कहना ही क्या है? भारतीय संस्कृति में तुलसी, वट, पीपल, केले आदि को तो देवताओं के वास रहने का आधार आध्यात्मिकता के साथ वैज्ञानिक सच है। हमारे कई शासकों प्रियदर्शी सम्राट अशोक शेरशाह और अन्य के द्वारा मार्गा के किनारे वृक्ष लगाने की परम्परा रही है।

भक्ति, नीति और नैतिकता के द्वारा चेतना को जगाने वाले सन्त कवियों ने पेड़-पौधों के महत्त्व को जान कर चनाएँ की हैं। एक दोहे में कबीर ने कहा है कि मनुष्य का जन्म दुर्लभ है। यह शरीर बार-बार नहीं मिलता। वृक्ष के फल जैसे झड़ जाते है और दूसरी बार नहीं आते,वैसे ही मनुष्य तन फिर नहीं मिलता—

**कबीर मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार।**
**तरुवर पैं फल झड़िपड़या बहुरि न आय।।**

मालिन को पत्ते तोड़ने से मना करते हैं और वे पत्ते-पत्ते में प्राण रहने की बात करते है। डा.जगदीशचंद्र बसु ने विश्व के सामने इस सत्य को उद्घाटित किया था— पेड़-पौधे भी हँसते और राते हैं। वे सुख-दुख का अनुभव करते हैं। शायद डा.बसु को भारतीय संस्कृति के अध्ययन से ही लगा होगा कि ये निर्जीव नहीं हैं, बल्कि इनमें भी चेतना की सत्ता है।

**वृक्ष कबहुँ न फल भखे, नदी न संचे नीर।**
**परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर।।**

वृक्ष अपना फल नहीं खाता है।नदी अपने जल का संचय नहीं करती। जो सज्जन और साधु हैं,उनका शरीर भी परोपकार के कार्य में आता है। राजा शिवि ने दानवों के विनाश के लिए अस्थि से वाण बनने को ले कर देह का दान कर दिया था। कबीरदास ने बड़े होने से क्या फायदा,जब तक कि दूसरे की भलाई नहीं कर पाए—

**बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।**
**पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर॥**

हमारी आध्यात्मिक चेतना को उत्कर्ष पर पहुँचाने वाले भक्त कवि सन्त तुलसीदास ने कहा है कि काशी के आनंदवन में वे तो साक्षात तुलसी के पौधे हैं। सन्त कवि ने कहा—

**तुलसी सन्त सुअंब तरु फूलि फलहिं पर हेत।**
**इतते ये पाहन हनत उततेवे फल देत।।**

सज्जनों और वृक्ष का स्वभाव एक है। जितना अपमान और चोट पहुँचाइए वे उपकार ही करते हैं। इस सन्दर्भ में तुलसीदास के अभिन्न मित्र और नीति, व्यवहार के कवि रहीम का कहना है

**तरूवर फल नहीं खात है, सरवर पियहिं न पानि।**
**कही रहीम परकाज हित,संपत्ति संचहिं सुजान।।**

इसके आगे के दोहे में रहीम मनुष्यों को वृक्ष के समान धैर्यवान बनने का उपदेश देते हैं

**कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।**
**समय पाइ तरुवर फले, केतक सींचो नीर॥**

फिर जो उत्तम स्वभाव के हैं,उनको बुरी संगति कुछ बिगाड़ नहीं सकती

**जो रहीम उत्तम प्रकृति का करी सकत कुसंग।**
**चंदन विष व्यापे नहीं लिपटे रहत भुजंग॥**

**"मौजूदा नीतियाँ दुनिया को इस सदी के अंत तक 2.8 डिग्री तक गर्म कर देंगी। यह सजाए-ए-मौत है। तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री तक रोकने की लड़ाई प्रमुख अर्थ व्यवस्थाओं की निगरानी में ही जीती या हारी जाएगी। नीतियाँ ही प्रमुख उत्सर्जक है।"**

बिहारी दास ने अपने अन्योक्ति के दोहे में भैंरे पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं

**इहीं आसे अटक्यो रहतु अलि गुलाब के मूल।**
**वैहें फिर बसंत ऋतु इन डारन वै फूल॥**

बिहारी दास तो गागर में सागर भरते हैं और इस दोहे का व्यापक अर्थ है। कवि दूरदर्शी भी होता है। मलूक दास ने तो हरी भरी डालियों को तोड़ने की मनाही पहले ही कह गए

**हरी डारि न तोड़िय लागै छुरा बान।**
**दास मलूका यों कहे, अपना सा जिव जान॥**

कविवर गोपाल सिंह नेपाली ने 'पीपल के पत्ते गोल-गोल, कुछ कहते ये डोल-डोल 'तो आरसी प्रसाद सिंह की इस कविता में चिड़िया हमें मुक्ति व स्वतंत्रता का संदेश सुनाती है—

**पीपल की ऊँची डाली पर बैठी चिड़िया गाती है।**
**तुम्हें ज्ञात अपनी बोली में क्या संदेश सुनाती है?**

हरिवंश राय बच्चन ने आज के इंसान को सचेत करते हुए कहा

**भूल गया है क्यों इंसान,**
**सबकी है मिट्टी की काया,**
**सब पर नभ की निर्मल छाया,**
**यहाँ नहीं है कोई आया,**
**ले विशेष वरदान भूल गया है क्यों इंसान।'**

सचमुच आज विकास तथा उन्नति के इस युग में हम प्रकृति की सत्ता को भूल कर अंधाधुंध वनों की कटाई कर के पर्यावरण के सन्तुलन को बिगाड़ रहे,अपना ही अपकार कर रहे हैं। भोजपत्र के पेड़ों का संरक्षण नहीं हो रहा तो गोरैया, चील, गीध आदि विलुप्त हो रहे। पारिस्थितिकी तंत्र बिगड़ने लगा है। जलवायु में परिवर्तन के कारण ग्लोबिंग वार्मिंग देखने को मिल रहा। ग्लेशियर पिघल रहा। असमय बाढ़ और सूखे का प्रकोप हो रहा। विश्व के विकसित देशों के कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा। भौतिक विज्ञानी और खगोलशास्त्री स्टीफन हॉकिन्स ने चेतावनी देते हुए कहा था कि अगर यही स्थिति दुनिया में तापमान वृद्धि की रही तो आनेवाले छः सौ वर्षों में कहीं पृथ्वी आग का गोला न बन जाए। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव एँटोनियो गुटेरस के इधर एक समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान' गत 24 अप्रैल 23 के संपादकीय पृष्ठ पर विचार को प्रकाशित किया गया है। उन्होंने कहा है

"मौजूदा नीतियाँ दुनिया को इस सदी के अंत तक 2.8 डिग्री तक गर्म कर देंगी। यह सजाए-ए-मौत है। तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री तक रोकने की लड़ाई प्रमुख अर्थ व्यवस्थाओं की निगरानी में ही जीती या हारी जाएगी। नीतियाँ ही प्रमुख उत्सर्जक है।"

***

# निसर्ग के सांनिध्य में

**डा.अजय शुक्ला**
व्यवहार वैज्ञानिक
गोल्ड मेडलिस्ट, इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स मिलेनियम अवार्ड. अंतरराष्ट्रीय ध्यान एवं मानवतावादी चिंतक और मनोविज्ञान सलाहकार प्रमुख - विश्व हिंदी महासभा. राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष - अखिल भारतीय हिंदी महासभा, नई दिल्ली . प्रबंध निदेशक - आध्यात्मिक अनुसंधान अध्ययन एवं शैक्षणिक प्रशिक्षण केंद्र, देवास - 455221, मध्य प्रदेश,

**मानव अपनी सुख-सुविधा के लिए जितना भी प्रयोग करता जाता है, साधनों को जुटाता जाता है, वह दु:खों और कष्टों के जाल में घिरता जा रहा है। भले ही वह एक आदर्श उपभोक्ता बन जाए, किन्तु वह मानवीय गुण का त्याग करते जा रहा है; नीरोगता उससे दूर होती जा रही है और अन्ततः वह जितना छटपटाता है, जाल कसता जाता है। ऐसी स्थिति में हमें प्रकृति की याद आती है। हम निसर्ग के सांनिध्य में जाकर उसी आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव करते हैं, जिसके लिए हमारे पूर्वज वानप्रस्थ आश्रम अपनाते थे। एक और बात महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त 'वनवास' शब्द के साथ भयावहता का संसार न होकर इसी प्रकृति के सांनिध्य का वातावरण है, जिसका वर्णन हम प्रस्तुत लेख में पाते हैं। रोग एवं औषधि-मुक्त जीवन का परिकल्पना भी वहीं जाकर साकार होती है।**

चेतना से चिन्तन की ओर मुखरित प्राणी जगत् ने जहाँ सर्वप्रथम चेतना की सुप्तावस्था अर्थात् पाषाण के प्रति अपनी श्रद्धा, आस्था एवं मान्यता पूज्य स्वरूप में व्यक्त की, वहीं पेड़-पौधों अर्थात् वृक्ष के पवित्रतम स्वरूप की अभिवृद्धि को जीवंत स्वरूप में चेतना की जागृति के साथ, समादर भाव भी अभिव्यक्त किया गया और जीव-जन्तुओं में चेतना की गतिशीलता को जीवन की नवीनता के सांनिध्य स्वरूप में स्वीकार करने के साथ ही मानवीय चेतना को चिन्तन की श्रेष्ठता के प्रति अत्यन्त सहजता के साथ नैसर्गिक रूप से अभिप्रेरित हो जाने की स्थितियाँ निर्मित हो गई क्योंकि मानवीय चेतना ने ही उत्कृष्ट चिन्तन के माध्यम से प्रकृति से जीवंत संबंध निर्मित करने हेतु भावनात्मक अर्थात् पूज्य स्वरूप के आशीष में गरिमामई अभिव्यक्ति प्रदान की थी। जीव जगत् का प्रकृति से नैसर्गिक जुड़ाव आदि काल से ही रहा है क्योंकि मनुष्यता और उससे संबद्ध, सभ्यता की भूमिका निभाने में प्रकृति का विराटता से युक्त नैसर्गिक सन्दर्भ एवं प्रसंग में अति महत्त्वपूर्ण योगदान सदा से ही अछुण्य रूप में विद्यमान रहा है।

मानव जीवन के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण का प्रथम आयाम स्वीकार्य होने पर 'जीवात्मा की बोधगम्यता का वास्तविक यथार्थ आत्म हित' के साथ व्यक्तिगत आदर एवं सत्कार के रूप में अनुभव द्वारा प्राप्त होता है जिससे निसर्ग के प्रति

व्यावहारिक रूप से गहन अनुराग स्वयं ही विकसित हो जाता है। पंचतत्व से निर्मित प्रकृति के रहस्य को समझने में दक्ष मानव जाति सदा ही प्रकृति की विराटता से संबंध रखते हुए स्वयं की शारीरिक संरचना को सक्षम बनाने हेतु अंतःकरण से 'सृजनात्मक समझ के साथ सन्तुलित व्यवहार के द्वारा सुदृढ़ सामंजस्य' को विशुद्ध स्वरूप से स्थापित करने में संलग्न रहती है।

## नैसर्गिक स्वरूप के विभिन्न जीवन उपयोगी पक्ष :

संपूर्ण जीवन काल में जब साधना के मार्ग पर व्यक्ति अग्रसर होता है तब साधक स्वयं को साध्य तक पहुंचाने के लिए शरीर रूपी साधन की पवित्रता के धर्म को पूरी तरह से निभाता है जिसमें जीवात्मा के माध्यम से गौरवान्वित नैसर्गिक स्वरूप के विभिन्न जीवन उपयोगी पक्ष पूर्णरूपेण स्पष्टता से परिलक्षित होते रहते हैं।

आत्मकल्याण से जुड़े हुए सभी सन्दर्भ और प्रसंग के उदाहरण स्वयं को परिमार्जित तथा परिष्कृत करने से संबंधित' होते हैं जिसमें परिवर्तन संसार का अनिवार्य तथा महत्त्वपूर्ण नियम है जिसे अत्यधिक सहजता एवं सरलता के स्वरूप में स्वीकार करते हुए प्रकृति के नियमों पर आधारित जीवन को भाव और विचार जगत से आत्मसात करना आवश्यक होता है। जीवन की उच्चतम स्थितियों के सानिध्य में गतिशील सर्व मानव आत्माओं ने स्वयं को साधने के लिए आत्मा के स्वमान, स्वरूप तथा आत्मिक निजी स्वभाव की धारणात्मक मनोवृति को सदा से ही अनुकरण किया है जो उनकी ज्ञानार्जन के प्रति व्यक्तिगत रूप से अगाध निष्ठा का सुखद परिणाम है।

## प्रकृति के सानिध्य द्वारा गतिशील जीवन शैली :

कर्म क्षेत्र की वास्तविक स्थिति शरीर एवं आत्मा के सन्तुलन द्वारा ही सुनिश्चित हो पाती है जिसमें निरोगी काया के माध्यम से सुख और आत्मगत चेतना के पुरुषार्थ से आत्मिक शांति की प्राप्ति निर्धारित होती है जो श्रेष्ठ संकल्प की सकारात्मकता से श्रेष्ठ विकल्प की सार्थकता को सिद्ध करने में पूर्ण सक्षमता के साथ समर्थ होती है।

चेतना की चैतन्यता को जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार बनाकर ज्ञान-बोध, योग-सत्कर्म, धारणा-अनुसरण, सेवा-परोपकार, क्षमा-कल्याण, तथा आत्मिक-समृद्धि को प्राप्त करने हेतु 'मानव सेवा से माधव सेवा' का महामंत्र प्रकृति के सांनिध्य द्वारा गतिशील जीवन शैली को व्यवहारिक स्वरूप में प्रतिबिंबित करते हुए प्रकृति के नियमों पर आधारित सुखी जीवन को सक्षम एवं समर्थ पुरुषार्थ की प्रासंगिकता के लिए प्रतिपादित किया जा सकता है।

## जीवात्मा की बोधगम्यता एवं निसर्ग से अनुराग

आत्मचेतना के विकास अनुक्रम में जीवात्मा की बोधगम्यता का यथार्थ 'बड़े भाग्य मानुष तन पावा' से आरंभ होता हुआ गतिशील रहता है, जिसमें 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है' सत्यता की इस वास्तविक पृष्ठभूमि को मानव जाति, जीवन पर्यंत स्वीकारते हुए अनुभवी बन जाती है। प्रकृति के पाँच तत्त्वों में संपूर्ण जीवन काल के अंतर्गत 'श्रद्धा, आस्था एवं मान्यता का स्वरूप' सदा ही पूजनीय स्थितियों में विद्यमान रहता है जो मनुष्य को निसर्ग के प्रति गहनतम अनुराग से संबद्ध कर देता है और अंततः आत्मीय अन्तःसंबंधों की सुखद परिणीति का महत्त्वपूर्ण आधार स्तंभ बन जाता है।

## संपूर्ण प्रकृतिगत संरचना और सृजनात्मक समझ :

मानवीय चित्त और चरित्र के श्रेष्ठ सामंजस्य से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से निर्मित संपूर्ण प्रकृति और मनुष्य की शारीरिक संरचना का सकारात्मक सह-संबंध मानव जीवन को सदैव प्रकृति की ओर लौट चलने का आह्वान करता रहा है।

जीवन की गतिशीलता में मनुष्य की खोजपूर्ण वृत्ति, प्रवृत्ति तथा मनोवृति के कारण ही संपूर्ण व्यक्तित्व मन, वचन एवं कर्म के प्रति सृजनात्मक समझ और सुदृढ़ सामंजस्य का सन्तुलित निर्माण सुनिश्चित हो सका है जो जीवात्मा को गरिमामय जीवन जीने के लिए अनुप्राणित करने में मददगार भूमिका निभाता है।

## साधन की पवित्रता तथा जीवात्मा का स्वरूप

साधना के क्षेत्र में साधक के समक्ष महान साध्य की जीवंत उपस्थिति, साधन की पवित्रता के धर्म पर विशेष बल देती है जिसके कारण आत्मा के पवित्रतम स्वरूप की महान उपलब्धिपूर्ण प्राप्ति आत्मानुभूति के माध्यम से इसी जन्म में होने से तपस्वी मानव आत्माएँ शेष जीवनकाल का शुद्ध उपयोग करने हेतु सदैव सजगता के साथ पुरुषार्थ करती रहती हैं। आत्मगत स्वमान के प्रति संपूर्ण समर्पण के साथ जीवात्मा पूर्णत: परमात्मा से संबंध स्थापित करके ही चेतना आत्मज्ञान, सुख, शांति, आनंद, प्रेम, पवित्रता एवं शक्ति की उच्चतम अनुभूति से नैसर्गिक रूप में अर्थात् अनादि, आदि, पूज्य, ब्राह्मण और फरिश्ता स्वरूप के आत्मिक अभ्यास से जीवात्मा का गौरवान्वित, नैसर्गिक स्वरूप विराटता के सानिध्य में प्रकट होता है।

## परिवर्तन का नियम एवं प्रकृति आधारित जीवन

मानव जाति के समक्ष सर्वाधिक बृहत् चुनौती किसी भी नवीन परिवर्तनकारी व्यवस्था को भले ही वह आत्महित से जुड़ी हो, उसे स्वीकार करने की होती है जिसमें, परिवर्तन संसार का अति महत्त्वपूर्ण नियम है, यह सत्य मनुष्य के द्वारा स्वयं जानने और उसे पूरी तरह से मानने के अनुभवी दौर से नित नूतन रूप में व्यक्ति स्वयं ही गुजरता रहता है। नैसर्गिक जीवन की सत्यता से साक्षात्कार हो जाने पर बहुआयामी व्यक्तित्व, कृतित्व एवं अस्तित्व के धनी, मानवीय संवेदनशील पृष्ठभूमि में जीवंत रूप से संबद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रकृति के नियमों पर आधारित जीवन शैली का अनुकरण और अनुसरण होने के कारण निरोगी काया अर्थात् शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों की अनुभूति का स्वरूप सर्व मानव आत्माओं के लिए प्रेरणादाई स्वरूप में निर्मित हो जाता है।

## आत्मा का स्वभाव और ज्ञानार्जन की निष्ठा

आध्यात्मिक क्षेत्र की उच्चता हेतु स्वयं को समर्पित करने में, समर्थ मानव आत्माओं ने भी यह स्वीकार किया है कि आत्मिक निजी स्वभाव की उपलब्धि, नियम-संयम, जप-तप, ध्यान-धारणा, स्वाध्याय-सत्य, प्रेम-अहिंसा, धर्म-कर्म, अध्यात्म-पुरुषार्थ, राजयोग-मौन को आत्मसात करके ही उन्होंने सर्वधर्म-समभाव, "बहुजनहिताय बहुजनसुखाय", "सर्वे भवन्तु सुखिन:" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की व्यवहारिकता को प्राप्त करने में महानता का मुकाम हासिल किया है। जीवन में समयानुसार आवश्यक परिवर्तन के साथ अनिवार्य एवं उपयोगी बदलाव सदा ही व्यक्ति के लिए मददगार सिद्ध हुए हैं; क्योंकि मानव जाति ने

सदा से ही नवीनतम ज्ञान अर्जन के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा को अभिव्यक्त करके "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" के मूल मन्त्र को साकार करने की पहल की है इसलिए सृष्टि पर "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, सत्यं वद, धर्मं चर" के सिद्धांत एवं व्यवहार फलीभूत स्वरूप में विकसित होकर, मानव जाति का समग्रता के साथ उत्थान एवं कल्याण करने में सफल सिद्ध हो सके हैं।

## निरोगी काया सुख तथा श्रेष्ठ संकल्प

प्रकृति के सानिध्य में गतिशील जीवन शैली के व्यवहारिक स्वरूप को अपनाने हेतु "सेवा अस्माकं धर्मः, के सानिध्य द्वारा सृजनात्मक स्वरूप के माध्यम से अनुभव युक्त प्रकृति के नियमों पर आधारित, रोग, चिकित्सक एवं दवामुक्त जीवन से संबंधित साहित्य का पठन-पाठन तथा मनन-चिन्तन अर्थात् संपूर्ण रूप से पारायण करके एक सामान्य व्यक्ति भी दैनिक जीवन के आचरण में पूर्णता के साथ लागू करके निरोगी काया से सुख प्राप्ति को संपूर्ण रूप से सुनिश्चित कर सकता है।

व्यवहारिक जीवन के परिदृश्य में श्रेष्ठ संकल्प द्वारा श्रेष्ठ विकल्प का आशावाद संपूर्ण व्यक्तित्व को सहजता से सकारात्मक जीवन से सार्थक जीवन की ओर गतिशील कर देने में सक्षम होता है, जिसकी परिणति दुर्लभ मानव जीवन के लिए प्रकृति की ओर पुनः लौट आने का आह्वान से संबद्ध चिन्तन ही प्रकृति के नियमों पर आधारित, सरल, सुलभ और व्यवहारिक समाधान के रूप में एक वैचारिक क्रांति का अग्रदूत बनकर रोग, चिकित्सक, दवा-मुक्त अभियान का श्रेष्ठतम स्वरूप धारण करके मानव जीवन के लिए वरदानी और उपयोगी मार्गदर्शक के रूप में निश्चित ही सुविकसित हो जाता है।

## मानव सेवा से माधव सेवा का सन्मार्ग

मानव सेवा से माधव सेवा के पवित्र संकल्प द्वारा स्वस्थ जीवन शैली के वैकल्पिक उपाय को विधिवत एवं न्याय संगत स्वरूप में सृजन धर्म का निर्वहन करते हुए स्वयं प्रकृति ने ही संपूर्ण मानव जाति को प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक पद्धति से मार्गदर्शन एवं परामर्श और उपचार हेतु मददगार भूमिका निभाते हुए अनुभव युक्त उपयुक्त व्यवहारिक सलाह के साथ निजी स्तर पर जीवन के लिए अति उपयोगी सहृदय रूप में अनेकानेक पीड़ित व्यक्तियों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सदा ही सहयोग भी प्रदान किया है जिसके परिणाम, अत्यन्त ही सन्तोषजनक तथा सुखी जीवन की प्राप्ति समस्त जीव-जगत् द्वारा सहज रूप से स्वीकार की गई है। अतः प्रकृति प्रदत्त दातापन की नैसर्गिकता, उदारता के सन्दर्भ एवं प्रसंग में व्यावहारिक अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकृति के नियमों पर आधारित रोग, चिकित्सक एवं दवामुक्त जीवन संपूर्ण मानवता के लिए हितकारी, कल्याणकारी एवं मंगलकारी स्वरूप का पर्याय बन जाने की प्रासंगिकता में नित्य नूतन रूप से संलग्न रहते हुए प्रकृति की संपूर्ण नैसर्गिक पवित्रता, प्राणी मात्र के लिए नवजीवन का आधार स्तंभ बनकर पुनर्जीवन स्वरूप द्वारा अतीत, आगत एवं अनन्त की व्यापक संभावनाओं के सानिध्य में आज भी निरंतर रूप से गतिमान बनी हुई है।

***

'भास्कराब्द' के प्रवर्तक

# कामरूप के कुमार भास्कर वर्मन

**श्री दिनकर कुमार**
शांति पथ, बीरकुची नंबर दो
गुवाहाटी- 781026(असम)

**प्रस्तुत आलेख धर्मायण की अंक संख्या 128, 'संवत्सर विशेषांक' से सम्बद्ध है। वर्तमान में बंगाब्द, उत्कलाब्द तथा मिथिला का फसली संवत् और आसाम का भास्कराब्द इन चारों में केवल एक वर्ष का अंतर होता है। वह अंतर भी बंगाल में अकबर के शासनकाल से आना आरम्भ हुआ है। भ्रमवश फसली संवत् को लोग इस्लामिक वर्षगणना से सम्बन्धित मान लेते हैं, जबकि सत्यता है कि ये सभी संवत्सर आसाम के भास्कर वर्मन के चलाये हुए हैं। कुमार भास्कर वर्मन वर्मन राजवंश के अंतिम और सबसे महान शासक थे, जिन्होंने 594-650 ईस्वी तक असम के कामरूप पर शासन किया था। उन्होंने राजवंश के खोए हुए गौरव और आकर्षण को वापस हासिल किया था। इसी भास्कर वर्मन के जीवन पर आधारित आसाम का इतिहास यहाँ प्रस्तुत है।**

असम का इतिहास भारतीय आर्य, तिब्बत और बर्मा की संस्कृति के मिश्रण की कहानी है। विद्वानों का मत है कि 'असम' शब्द संस्कृत के 'असोमा' शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है अनुपम या अद्वितीय। किन्तु अधिकतर विद्वानों का मानना है कि यह शब्द मूल रूप से 'अहोम' से बना है।

ब्रिटिश शासन में जब इस राज्य का विलय किया गया उससे पहले लगभग छह सौ वर्ष तक इस राज्य पर 'अहोम' राजाओं का शासन रहा था। आस्ट्रिक, मंगोलियन, द्रविड़ और आर्य जैसी विभिन्न जातियाँ प्राचीन समय से इस प्रदेश की पहाडियों और घाटियों में अलग अलग समय पर आकर रहीं और बस गयीं जिसका यहाँ की मिश्रित संस्कृति में बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इस राज्य के विकास में इन सभी जातियों ने अपना योगदान दिया। इस प्रकार असम राज्य में संस्कृति और सभ्यता की एक प्राचीन और समृद्ध परम्परा रही है।

प्राचीन समय में यह राज्य 'प्राग्ज्योतिष' अर्थात् 'पूर्वी ज्योतिष का स्थान' कहलाता था। कालान्तर में इसका नाम 'कामरूप' पड़ गया। कामरूप राज्य का सबसे पुराना उदाहरण इलाहाबाद में समुद्रगुप्त के शिलालेख से मिलता है। इस शिलालेख में कामरूप का विवरण ऐसे सीमावर्ती देश के रूप में मिलता है, जो गुप्त साम्राज्य के अधीन था और गुप्त साम्राज्य के साथ इस राज्य के मैत्रीपूर्ण संबन्ध थे। कामरूप के ही शासक भूतिवर्मा ने 554 ई. में अश्वमेध यज्ञ किया था।

**"कुमार भास्कर वर्मन वर्मन राजवंश के अंतिम और सबसे महान शासक थे, जिन्होंने 594 -650 ईस्वी तक असम के कामरूप पर शासन किया था। उन्होंने राजवंश के खोए हुए गौरव और आकर्षण को वापस हासिल किया था। वह शास्त्रों में पारंगत थे और राजसी गुणों से संपन्न थे, कर्तव्य के प्रति समर्पण और अपने लोगों के लिए अमोघ प्रेम प्रदर्शित करते थे।"**

चीन के विद्वान् यात्री ह्वेनसांग लगभग 743 ईस्वी में राजा कुमार भास्कर वर्मन के निमन्त्रण पर कामरूप में आया था। ह्वेनसांग ने कामरूप का उल्लेख 'कामोलुपा' के रूप में किया है। 11वीं शताब्दी के अरब इतिहासकार अलबरूनी की पुस्तक में भी 'कामरूप' का विवरण प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर 12वीं शताब्दी ईस्वी तक समस्त आर्यावर्त में पूर्वी सीमांत देश को 'प्राग्ज्योतिष' और 'कामरूप' के नाम से जाना जाता था और यहाँ के नरेश स्वयं को 'प्राग्ज्योतिष नरेश' कहलाया करते थे।

असम का राजनीतिक इतिहास पहली सहस्राब्दी ईस्वी से शुरू होता है जब राजवंशों का गठन शुरू हुआ। असम की ब्रह्मपुत्र घाटी पर कई राज्यों का शासन रहा था। राज्य का वास्तविक राजनीतिक इतिहास वर्मन राजवंश से शुरू होता है जिसने असम पर 350 ईस्वी से 650 ईस्वी तक शासन किया था, जब असम को कामरूप के नाम से जाना जाता था और इसकी राजधानी प्रागज्योतिषपुर थी।

पुष्यवर्मन, जो समुद्रगुप्त के समकालीन थे, ने चौथी शताब्दी ईस्वी के दौरान वर्मन राजवंश का गठन किया था। यह गुप्त साम्राज्य का एक सहायक था, लेकिन जैसे ही गुप्त राजवंश की शक्ति में गिरावट आई, महेंद्र वर्मन ने वर्मन राजवंश को मजबूत किया और 470 से 494 तक शासन किया। दो अश्वमेध यज्ञ किए और गुप्त वंश के बोझ और दमन से मुक्ति पाई। इस वंश के पतन के बाद क्रमशः सालस्तंभ वंश और पाल वंश ने कामरूप पर शासन किया।

वर्मन राजवंश को भौम या नरक वंश के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यह पौराणिक पात्रों नरकासुर, भगदत्त और वज्रदत्त की वंशावली है। पुष्य वर्मन द्वारा स्थापित राजवंश ने कामरूप पर लगभग तीन सौ वर्षों तक शासन किया।

कामरूप का राज्य समुद्र वर्मन, बल वर्मन और नारायण वर्मन के शासन के दौरान फला-फूला, जो पुष्य वर्मन के वंशज थे। चूँकि वर्मन वंश की वंशावली दुबी और निधानपुर ताम्रपत्र शिलालेखों में पूरी तरह से प्रमाणित होती है, इनमें पुष्य वर्मन को संस्थापक का नाम दिया गया है। नालंदा की दूसरी मिट्टी की मुहर के अनुसार, महेंद्र वर्मन को 'दो घोड़ों की बलि' के कर्ता के रूप में सन्दर्भित किया गया था। महाभूत वर्मन को भूति वर्मन (510-555 ईस्वी) के नाम से भी जाना जाता है, जो अपने पिता नारायण वर्मन के उत्तराधिकारी थे। बडगंगा शिलालेख में कहा गया है कि इस राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया था। भूति वर्मन के कई सामंत राजा थे। ऐसा माना जाता है कि उसने लगभग 550 ईस्वी में पुंड्रवर्धन पर विजय प्राप्त की थी। भूति वर्मन के बाद उसका पुत्र चंद्रमुख वर्मन कामरूप के सिंहासन पर बैठा। फिर स्थित वर्मन ने उसका स्थान लिया।

कुमार भास्कर वर्मन वर्मन राजवंश के अंतिम और सबसे महान शासक थे, जिन्होंने 594-650 ईस्वी तक असम के कामरूप पर शासन किया था। उन्होंने राजवंश के खोए हुए गौरव और आकर्षण को वापस हासिल किया था। वह शास्त्रों में पारंगत थे और राजसी

गुणों से संपन्न थे, कर्तव्य के प्रति समर्पण और अपने लोगों के लिए अमोघ प्रेम प्रदर्शित करते थे। राजा हर्षवर्धन के साथ उनकी मैत्री थी। दोनों राजाओं को गौड़ के राजा के रूप में एक आम दुश्मन मिला था। यह निधानपुर ताम्रलेख से और ह्वेन-त्सांग के वर्णन से स्पष्ट है कि भास्कर वर्मन की मृत्यु के बाद वर्मन वंश का शासन समाप्त हो गया और कामरूप की गद्दी पर सालस्तंभ वंश ने अधिकार कर लिया।

असम का प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिषपुर था। पौराणिक कथाओं या प्राचीन साहित्य में असम का नाम कामरूप या कमतापुर बताया गया है। बाद में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से अहोम शासन के तहत क्षेत्र 'असम' के रूप में जाना जाने लगा। 'वर्मन' वंश प्राचीन असम का पहला ऐतिहासिक राजवंश था। इस वर्मन वंश के सबसे प्रसिद्ध राजाओं में से एक कुमार भास्कर वर्मन थे।

वर्मन वंश के संस्थापक पुष्य वर्मन थे। कामरूप का राज्य पुष्य वर्मन द्वारा स्थापित पहला ऐतिहासिक राज्य था। कामरूप के पुराने साम्राज्य का वास्तविक राजनीतिक इतिहास वर्मन राजवंश की स्थापना के साथ शुरू हुआ। पुष्य वर्मन समुद्रगुप्त के समकालीन थे। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि वर्मन वंश के राजाओं में से एक सुस्थित वर्मन थे।

सुस्थित वर्मन के दो बेटे थे– सुस्थापित वर्मन और कुमार भास्कर वर्मन। अपने पिता सुस्थित वर्मन की मृत्यु के बाद सुस्थापित वर्मन ने कामरूप का शासन संभाला। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि सुस्थित वर्मन की मृत्यु के बाद गौड़ राजा ने कामरूप पर आक्रमण किया लेकिन वीरता पूर्वक सुस्थापित वर्मन और भास्कर वर्मन ने आक्रमण का प्रतिरोध किया। सुस्थापित वर्मन ने कामरूप पर 593 से 594 ईस्वी तक शासन किया। अपने बड़े भाई सुस्थापित वर्मन की मृत्यु के बाद, जिनकी केवल एक वर्ष तक शासन करने के बाद मृत्यु हो गई, भास्कर वर्मन ने कामरूप पर शासन किया। भास्कर वर्मन उस समय भारत के प्रसिद्ध राजा थे।

कुमार भास्कर वर्मन ने 594 ईस्वी से 650 ईस्वी तक शासन किया। वह 594 ईस्वी में कामरूप के सिंहासन पर बैठे और 650 ईस्वी तक 50 वर्षों तक शासन किया। वह वर्मन वंश के एक कुशल और शक्तिशाली शासक थे। उन्हें बाणभट्ट द्वारा कुमार और हुवेन सांग द्वारा कुमार राजा कहा गया था। भास्कर वर्मन उत्तरी भारतीय राज्य कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के समकालीन थे।

यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि भास्कर वर्मन के सिंहासन पर बैठने की पूर्व संध्या पर गौड़ शासकों महासेना गुप्त और शशांक ने कामरूप के पूर्वी राज्य के हिस्से पर भी विजय प्राप्त की थी। शशांक के हाथों कामरूप की हार और पुंड्रवर्धन की हार ने इसकी स्थिति को कमजोर कर दिया। इसलिए कुमार भास्कर वर्मन ने कामरूप की खोई हुई स्थिति को बहाल करने के लिए गौड़ के खिलाफ एक कूटनीतिक अभियान चलाया।

हर्षवर्धन के पूर्ववर्ती राज्यवर्धन थे। राज्यवर्धन के शासनकाल के दौरान गौड़ साम्राज्य के राजा शशांक ने कन्नौज के हिस्से पर कब्जा कर लिया और दुर्भाग्य से शशांक के साथ युद्ध में उनकी मृत्यु हो गई। इन्हीं कारणों से भास्कर वर्मन ने बाद में शासन संभाला और हर्षवर्धन को मैत्री का प्रस्ताव भेजा और कुमारा भास्कर वर्मन ने कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के साथ मैत्री की। शशांक हर्षवर्धन का भी प्रमुख राजनीतिक शत्रु था। इसलिए कुमार भास्कर वर्मन ने राजदूत हंसवेग के माध्यम से हर्षवर्धन के पास मैत्री का प्रस्ताव भेजा। गौरतलब है कि भास्कर वर्मन ने मैत्री की पेशकश करते समय कई कीमती सामान जैसे पशु सींग के आभूषण, मोतियों की माला, रेशमी कपड़ा आदि भी

भेजा था।

हर्षचरित के अनुसार भास्कर वर्मन अपने पिता सुस्थिर वर्मन के देहान्त के बाद सीधे प्राग्ज्योतिष के सिंहासन पर बैठे थे। भास्कर वर्मन द्वारा प्रस्तुत शिलालेख में उल्लेख है कि सुप्रतिष्ठित वर्मन एक प्रजा हितैषी राजा थे जो विद्वानों और युद्ध हाथियों से सुसज्जित थे। इसका अर्थ है कि सुप्रतिष्ठित वर्मन अपने पिता सुस्थिर वर्मन के उत्तराधिकारी बने थे और फिर भास्कर वर्मन प्रागज्योतिषपुर के राजा बने। कुमार भास्कर वर्मन संभवत: 606 ईस्वी (कुछ लोग कहते हैं कि 600 ईस्वी) में प्राग्ज्योतिष के सिंहासन पर बैठे। थानेश्वर के राजा राज्यवर्धन की हत्या के बाद, उनके भाई हर्षवर्धन 606 ईस्वी में थानेश्वर के सिंहासन पर बैठे और प्रागज्योतिष के राजा कुमार भास्कर वर्मन को हर्षवर्धन के राज्याभिषेक के लिए आमंत्रित किया गया। हर्षवर्धन एक धार्मिक व्यक्ति थे और उन्होंने शुरू में सिंहासन पर बैठने से इनकार कर दिया था। बाद में बौद्ध भिक्षुओं की सलाह पर उन्होंने शीलादित्य नाम लिया और थानेश्वर का शासन सँभाला।

भास्कर वर्मन ने अपने नाम के आगे 'कुमार' शब्द क्यों लिखा इसका सटीक कारण अज्ञात है, लेकिन कुछ का मानना है कि उन्होंने अपने नाम के पहले 'कुमार' शब्द का इस्तेमाल किया; क्योंकि वह एक चिरकुमार (अविवाहित) थे। कुमार भास्कर वर्मन एक बुद्धिमान राजा थे।

कुमार भास्कर वर्मन ने धन या सैन्य शक्ति की तुलना में आध्यात्मिक शक्ति और मित्रता के माध्यम से प्राप्त शक्ति पर अधिक जोर दिया। उन्होंने प्रसिद्धि और यश पर अधिक जोर दिया। कुमार भास्कर वर्मन के इन गुणों ने महाराजा हर्षवर्धन को आकर्षित किया। इसलिए हर्षवर्धन और भास्कर वर्मन की संयुक्त सेना शशांक जैसे दुश्मन को हराने और नष्ट करने में सक्षम थी। निधानपुर अभिलेख में भी कर्णसुवर्ण की विजय का उल्लेख है। हुएनसांग कहते हैं कि कुमार भास्कर वर्मन के दिनों में कामरूप का राज्य भारत के प्रमुख राज्यों में से एक था। उत्तर भारत में बोली जानेवाली मैथिली और मगही भाषा से प्रभावित संस्कृत उस समय कामरूप में बोली जाती थी। बेशक पाली और प्राकृत भी बोली जाती थी। हुएनसांग कामरूप के लोगों की सरलता और मेहमाननवाजी की प्रशंसा करते हैं। राजा और प्रजा सभी विद्वान और अध्ययनशील थे। ऐसा कहा जाता है कि उस समय कामरूप के राजा भास्कर वर्मन का उच्च बौद्धिक नेतृत्व ऐसा वातावरण बनाने में सक्षम था।

भास्कर वर्मन कई बुद्धिमान, विद्वान, वैज्ञानिक और संगीत प्रेमियों को अपने राज्य ले आए और एक बौद्धिक परिवेश का निर्माण किया। वास्तव में भास्कर वर्मन के पूर्वज भी विद्वान थे। भास्कर वर्मन के शासनकाल के दौरान कामरूप आयुर्वेद और और अलंकार के अभ्यास में सबसे आगे था। इसके अलावा, भास्कर वर्मन के शासनकाल के दौरान हस्तनिर्मित मिट्टी की कलाकृतियाँ बहुत लोकप्रिय थी। इस बात के प्रमाण हैं कि कामरूप में बने ऐसे उत्पादों का नालंदा विश्वविद्यालय में भी व्यापक रूप से उपयोग किया जाता था।

भास्कर वर्मन को पुराने कामरूप का सबसे महान राजा माना जाता है। उनके शासन काल में कामरूप राज्य की कीर्ति पूरे भारत में फैल गई। भास्कर वर्मन का शासनकाल प्राचीन असम में एक गौरवशाली अध्याय था।

***

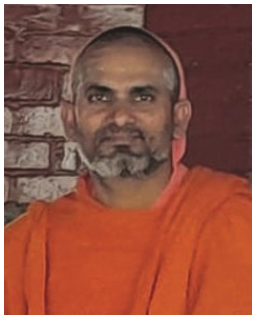

स्वामी गोविन्दानन्द सरस्वती
पम्पाक्षेत्र

मानव के कल्याण हेतु आविर्भूत भगवच्चरित्रों का प्राकट्य भारतवर्ष के किन स्थलों पर हुआ, इनमें श्रीराम-श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवों के विषय में मतान्तर है। विभिन्न भू-भाग के वासी अपनी दृढ़ आस्था के कारण अपने ही क्षेत्र में देवों का आविर्भाव मानकर अथवा उनके साथ किसी न किसी प्रकार से सम्बन्ध जोड़कर गौरव का अनुभव करते हैं। यह तथ्य अन्ततः हमारी एकात्मकता को ही सिद्ध करता है, जो दुन्दुभि-घोष के योग्य है।

श्रद्धेय स्वामी गोविन्दानन्द सरस्वती किष्किन्धा में हनुमानजी के जन्मस्थान के समर्थक हैं। उन्होंने वाल्मीकि-रामायण के प्रमाणों के आधार पर इसे सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने इसके लिए विशुद्ध शास्त्रार्थ शैली अपनायी है। गुहा में हनुमानजी का जन्म हुआ था, यह निर्विवाद है। इस आलेख में गुहा के साथ किष्किन्धा का समानाधिकरण्य सिद्ध करते हुए प्रमाण दे रहे हैं। किन्तु यहाँ केवलान्वयित्व प्रदर्शित है, व्यतिरेक-सम्बन्ध पर भी विमर्श आवश्यक प्रतीत होता है। हम आशा करते हैं कि देश के विद्वान् इस विषय पर अपना मत देंगे। जहाँ-जहाँ गंगा है, वहाँ-वहाँ नदी शब्द का प्रयोग तो होगा ही, किन्तु जहाँ-जहाँ नदी है, वहाँ-वहाँ भी गंगा का अर्थ लेना मतवाद का विषय है।

॥ शं नो विष्णुः ॥

इन दिनों आंजनेयाद्रि (किष्किन्धा, हम्पी, कर्णाटक), अंजनाद्रि (तिरुपति, आन्ध्रप्रदेश), गोकर्ण (कर्णाटक), अंजनेरी (नासिक), कैथल (हरियाणा), अंजनीगुफा (डांग, गुजरात) एवं आंजन गाँव (गुमला, झारखण्ड)— इन सात स्थलों को हनुमज्जन्मभूमि के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। हमने उक्त सभी स्थानों की स्वयं यात्रा की है और यह पाया कि किष्किन्धा-स्थित आंजनेयाद्रि ही प्रशस्तरूप से श्रीहनुमज्जन्मभूमि है। यही स्थान सम्प्रति हमारे परमपूज्य चारों जगद्गुरु शंकराचार्यों सहित अनेक धर्माचार्यों के द्वारा समर्थित हैं। समर्थन के मूल में प्रचुर शास्त्रप्रमाण उपलब्ध हैं; जिनको इस आलेख में पाठकों की सुविधा हेतु संकलित किया जा रहा है।

सर्वप्रथम यह स्मरणीय है कि वैदिक धर्मावलम्बियों के लिए सर्वश्रेष्ठ प्रमाण वेद ही है; जिसका विरोध करने पर हम परमात्मा को भी पूज्य नहीं मानते। इसीलिए वेदविरुद्ध उपदेश करनेवाले नारायणावतार बुद्ध को अपूज्य मानकर हम लोगों ने किसी मन्दिर में स्थान नहीं दिया। प्रमाणकुशल महर्षियों एवं पूर्वाचार्यों ने अर्थविचार की जिस मर्यादा को स्थिर किया है; तदनुसार वेद के अर्थ का निर्धारण स्मृति, इतिहास एवं पुराणों के द्वारा होना चाहिए :

**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।**[1]

इतिहास तथा पुराणों में परस्पर विरोध मिलने पर इतिहास का प्रमाण प्रबल होता है, जबकि दोनों इतिहासों में ज्येष्ठ/पूर्ववर्ती होने के कारण रामायण सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है :

**अनयोरुभयोर्मध्ये इतिहासः प्रबलः।**[2] **इतिहासश्रेष्ठेन श्रीरामायणेन।**[3]

श्रुति (वेद), स्मृति (इतिहास एवं धर्मशास्त्र) तथा पुराणों में परस्पर विरोध होने पर स्मृति को पुराण से तथा श्रुति को स्मृति से प्रबल माना गया है4 जबकि श्रुतियों में परस्पर विरोध होने पर विवक्षानुसार अर्थ करना श्रेयस्कर है[5] ऐसी स्थिति में श्रीहनुमान् के जन्मस्थान-विषयक प्रमाणवचनों का हमें सर्वोच्च प्रमाणग्रन्थ में अनुसन्धान करना चाहिए; ताकि उससे निम्नवर्ती प्रमाणों का स्वतः निराकरण हो जाए। इस विमर्श के लिए वाल्मीकीय रामायण सर्वमान्य एवं सर्वश्रेष्ठ प्रमाणग्रन्थ है। अतः हम उसी के प्रमाणों को पाठकों के समक्ष रखते हैं :

सीताजी की खोज हेतु वानरसेना-सहित निकले हनुमानजी को समुद्रतट पर उनके बल का स्मरण करवाते समय जाम्बवान् ने यह सूचित किया था कि आपका जन्म एक गुहा (गुफा) में हुआ है :

**एवमुक्ता ततस्तुष्टा जननी ते महाकपे।**
**गुहायां ते महाबाहो प्रजज्ञे प्लवगर्षभ।**[6]

शंका : इस श्लोक में 'किष्किन्धा' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया, तो क्यों किष्किन्धा को ही हनुमज्जन्मभूमि माना जाए?

समाधान : वस्तुतः वानरों की 'किष्किन्धा' नगरी इस पर्वतक्षेत्र में विद्यमान अनेक गुफाओं के बीच बनी थी :

**'बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे।**[7]'

अनेक गुफाओं के समूह में स्थित होने से स्वयं वाल्मीकीय रामायण में ही 'किष्किन्धा' के साथ 'गुहा' शब्द का सामानाधिकरण्य प्रयोग मिलता है :

**'किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा।**[8]'
**'प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात्।**[9]'
**'किष्किन्धां यः समध्यास्ते गुहां सगहनद्रुमाम्।**[10]'
**'किष्किन्धां विशतुर्हृष्टौ सिंहौ गिरिगुहामिव।**[11]'

इत्यादि।

तदतिरिक्त;

**'इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुमितोऽर्हसि।**[12]'
**'सुसमृद्धां गुहां रम्यां सुग्रीवो वानरर्षभः।**[13]'
**'इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता।**[14]',

1 महाभारत 1.1.292
2 लोकाचार्य : श्रीवचनभूषण, वरवरमुनिकृत व्याख्या सहित, सूत्र 3, पुरी, 1926ई. पृ. 24
3 लोकाचार्य : श्रीवचनभूषण, उपरिवत्, सूत्र 5 पृ. 29.
4 व्यासस्मृति 1.4- श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा।; ब्रह्मसूत्र 2.1.1- "स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात्।"
5 मनुस्मृति 2.14- श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ। उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः॥
6 वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रेस का पाठ, 4.66.20.
7 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.26.41.
8 वाल्मीकीय रामायण, तदेव,1.1.67.
9 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.33.1.
10 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 6.28.30.
11 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 7.34.43
12 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.26.7
13 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.26.9
14 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.26.15.

**'प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम्।[15]',**
**'अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्।[16]',**
**'गुहां प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः।[17]'**

इत्यादि अनेक स्थलों पर भूषण-तिलक-माहेश्वरी-अमृतकतक-आदि व्याख्याओं में भी किष्किन्धा एवं गुहा में विशेषण-विशेष्य-भाव माना है। वस्तुतः यहाँ पूर्वमीमांसादर्शन का 'छागपशुन्याय'[18] समझना चाहिए; जिसके अनुसार रामायण में किष्किन्धा को सामान्यतः गुहा तथा प्रसंगवश गुहा को विशेषतः किष्किन्धा कहा गया है।

इसके अतिरिक्त; महाभारत में भी **'गुहामासादयामास किष्किन्धां लोकविश्रुताम्।**[19] के द्वारा किष्किन्धा को गुहा ही कहा गया है। पाणिनि-सूत्र 'पारस्करप्रभृतीनि च सञ्ज्ञायाम्'[20] सूत्र के महाभाष्य-काशिका-आदि सभी प्रामाणिक व्याख्यानों में 'किष्किन्धा' को 'गुहा' की संज्ञा माना है।[21] फलतः उक्त वचनों को देखकर यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जाम्बवान् द्वारा प्रयुक्त 'गुहा' शब्द वस्तुतः 'किष्किन्धा' के लिए ही प्रयुक्त है। अतः यह सिद्ध है कि श्रीहनुमान् का अवतार किष्किन्धा क्षेत्र में ही हुआ है।

गुमला, कैथल या डांग में प्रचारित हनुमज्जन्म-स्थानों के मूल में कोई शास्त्रप्रमाण नहीं है। वहाँ केवल कुछ दस-बीस वर्षों से दुष्प्रचारित अप्रामाणिक जनश्रुतियाँ ही हैं; जो कि वाल्मीकीय रामायण के विरुद्ध होने से आदरणीय नहीं है। यदि तत्तत् स्थान के मान्य विद्वान् अपने पक्ष में वाल्मीकीय रामायण से श्रेष्ठ अथवा तुल्य बलवाला कोई प्रमाण दें, तो हम अवश्य ही उनका आदर करेंगे।

तदतिरिक्त; गोकर्ण में हनुमज्जन्मभूमि की सम्भावना स्वयं वाल्मीकीय रामायण से ही निरस्त होती है। कारण कि श्रीहनुमान् ने सीताजी के समक्ष अपना परिचय देते हुए यह कहा कि जब मेरे पिता— केसरी शम्बसादन दैत्य को मारने हेतु गोकर्ण गए हुए थे, तब उन्हींकी पत्नी— अंजना के गर्भ से वायुदेव के द्वारा मेरा जन्म हुआ :

**ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः।**
**स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः।**
**तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरन्।**
**यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि॥**[22]

प्रसंगवश इस स्थल की तिलक-टीका उल्लेखनीय है :

**'तस्य हरिणः हरेः केसरिणः क्षेत्रे पत्न्याम् अञ्जनायां जातः पितुः देशान्तरगमनकाले जातः अनेन अन्यक्षेत्रे कथम् अन्येन उत्पादनमिति शङ्का पराकृता'।**

इसी की पुष्टि अन्यत्र की गई कि एक दिन माता अंजना अकेले पर्वत पर भ्रमण कर रहीं थीं, जब वायुदेव ने उनकी हिंसा किए बिना श्रीहनुमान् को उनके गर्भ में स्थापित किया। तब गुहा (अर्थात् किष्किन्धा-स्थित आंजनेयाद्रि) में ही श्रीहनुमान् का जन्म हुआ (4.66.8-20)। फलतः गोकर्ण में हनुमान् का जन्म असम्भव है; क्योंकि उनके जन्मकाल के समय

15 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.26.18.
16 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.27.1.
17 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.30.1
18 पूर्वमीमांसादर्शन जैमिनि-सूत्र, 6.8.31- "छागो वा वर्णमन्त्रात्।"
19 महाभारत : 2.31.17 गीताप्रेस, नवम संस्करण, सं. 2053, प्रथम खण्ड, दिग्विजय पर्व, पृ. 755, - तं जित्वा स महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम्। गुहामासादयामास किष्किन्धां लोकविश्रुताम्॥
20 अष्टाध्यायी : 6.1.157
21 पाणिनीय गणपाठ- ...5. किष्किन्धा गुहा
22 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 5.35.81-83.

केसरीजी की गोकर्णयात्रा का उल्लेख है तथा उपर्युक्त श्लोकगत 'गोकर्ण' एवं 'क्षेत्र' शब्द में सामानाधिकरण्य नहीं है; जिससे दोनों में एकत्व की कल्पना हो सके।

तदतिरिक्त

**अञ्जने त्वं हि शेषाद्रौ तपस्तप्त्वा सुदारुणम्।**
**पुत्रं सूतवती यस्माल्लोकत्रयहिताय वै।**
**प्रसिद्धिं यातु शैलोऽयमञ्जने नामतस्तव।**
**अञ्जनाचल इत्येव नात्र कार्या विचारणा।[23]'**

इत्यादि वचनों (?) में तिरुपति में माता अंजना की तपस्या का वर्णन मिलता है; जिसके बल पर कुछ लोगों को वहीं हनुमज्जन्मभूमि की भ्रामक कल्पना कर ली है। किन्तु उक्त श्लोकों में 'शेषाद्रौ' शब्द का अन्वय 'तप्त्वा' के साथ करने से ही वाल्मीकीय रामायण के साथ उसकी संगति लग सकेगी। और वस्तुतः इन श्लोकों की प्रामाणिकता स्वयमेव सन्दिग्ध है। कदाचित् इसीलिए 'श्रीवेंकटाचलमाहात्म्यम्—हिन्दी' में लिखा है :

'अंजनादेवी के तप का पर्वत होने के कारण उस पर्वत को अंजनाद्रि नाम स्थिर हुआ'।[24]

ब्रह्मपुराण[25] में गौतमी के पैशाचतीर्थ (वर्तमान नासिक) में श्रीहनुमान् के जन्म का उल्लेख है :

**'गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद।**
**तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा।**
**अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी**
...
**गीतं नृत्यं हास्यं च कुर्वत्यौ गिरिमूर्धनि।**
**वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ।**
**कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः।**
**भार्ये भवेतामुभयोरावां देवौ वरप्रदौ।**
**ते अप्यूचतुरस्त्वेतद्रेमाते गिरिमूर्धनि।**
**अञ्जनायां तथा वायोर्हनुमान् समजायत'।**

किन्तु यदि दुर्जनतोषन्याय से थोड़ी देर के लिए यदि ब्रह्माण्डपुराण के पूर्वोक्त वचन द्वारा तिरुपति को श्रीहनुमान् का जन्मस्थान मानें, तो भी ब्रह्म और ब्रह्माण्ड — इन दोनों पुराणों में ही परस्पर विरोध प्राप्त होगा। तुल्य बल वाले इन दोनों प्रमाणों में किसका पक्ष लिया जाए? और फिर ये दोनों पक्ष इतिहास—वाल्मीकीयरामायण से विरुद्ध हैं।

अतः श्रेयस्कर यही है कि हम इन दोनों से प्रबल—वाल्मीकीय रामायण द्वारा निर्दिष्ट—किष्किन्धा को ही हनुमज्जन्मभूमि मानें :

**गुहायां ते महाबाहो प्रजज्ञे प्लवगर्षभ।[26]'**

पुराण की अपेक्षा इतिहास (तत्रापि रामायण) की प्रामाण्य-श्रेष्ठता को हम ऊपर दिखला चुके हैं। एतदतिरिक्त अन्य रामायणों में जो कुछ है; वह वाल्मीकिवाणी का अनुवाद ही है। रामचरित्र के विषय में श्रीवाल्मीकि से विरुद्ध कुछ भी प्रमाण नहीं है। अतः उन सभी परवर्ती ग्रन्थों के उद्धरण-अनुवाद-समीक्षण-आदि अनावश्यक हैं। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास को भी श्लोक-लेखन सिखाने वाले महर्षि वाल्मीकि हैं :

**रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया।**
**करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च।[27]**

अतः वे भी आदिकवि वाल्मीकि का विरोध नहीं कर सकते। फलतः किष्किन्धा ही श्रीहनुमान् की निर्विवाद जन्मभूमि है। नारायणस्मृतिः॥

***

23 ब्रह्माण्डपुराणोक्त वेंकटाचलमाहात्म्य, 5.65-66, श्री प्रयागदासजी (सम्पादक), वैशाख संवत् 1961 (1904ई.), खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई, पृ. 128

24 यद्दनपूडि वेंकटरमणराव, तिरुमल-तिरुपति-देवस्थानम्, 2013, पृ.70

25 ब्रह्मपुराण, 84.2-12, एस., एन. खण्डेलवाल (सम्पादक), पूर्वभाग, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2016 ई., पृ. 511

26 वाल्मीकीय रामायण, तदेव, 4.66.20

27 बृहद्धर्मपुराण 1.30.55, म.म. हरप्रसाद शास्त्री, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1888ई., पृ. 194

# भारत के प्रसिद्ध वट-वृक्ष-स्थल

**श्री रवि संगम**

बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना। लेखक इन सभी स्थलों पर स्वयं घूमकर बौद्ध-सर्किट के पर्यटन स्थलों पर पुस्तक लिख चुके हैं।

**इस अंक के अनेक आलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वृक्ष-उपासना हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। प्रत्येक प्राचीन गाँव में एक-दो एसे वृक्ष अवश्य मिल जायेंगे, जिनके नीचे लोग जाकर जल चढाते हैं, धूप-दीप जलाते हैं; परिवार किसी भी शुभ अवसर पर जाकर वहाँ दूध चढ़ाते हैं- इन्हें हम ब्रह्मथान, डिहबार-थान आदि के नाम से पुकारते हैं। इनके साथ ही, देश में व्यापक स्तर भी ऐसे अनेक वृक्ष हैं जो देवस्थान बन चुके हैं, दूर-दूर से यात्री आकर वहाँ दर्शन करते हैं। इनमें पीपल तथा वट के वृक्ष अधिक हैं। प्रयाग का अक्षय वट, बोधगया का बोधिवृक्ष आदि ऐसे 8 पर्यटन स्थलों का यहाँ सांगोपांग विवेचन पर्यटन की दृष्टि से किया गया है। रवि संगमजी पर्यटन-सूचना के विशेषज्ञ हैं, अतः उनकी अपनी अलग लेखन शैली है।**

देश में वृक्षों की पूजा की हिन्दू धर्म में कई उदाहरण हैं, जबकि बौद्ध धर्म में इसका सिर्फ एक उदाहरण है। वैसे आमतौर पर दो धर्मो के बीच तुलनात्मक रिसर्च उचित नहीं माना जाता। यदि प्राचीनता की बात करें तो वैदिक काल के बाद ही बौद्धकाल का स्थान आता है। फिर यह विवाद का कतई विषय नहीं कि बौद्धधर्म से ही वृक्षों की पूजा का विधान प्रारंभ हुआ। रही प्रमाणिकता की तो आधुनिक काल में भी इसके कई ऐसे साक्ष्य हैं कि स्वतः प्रमाणित हो जाता है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग (वैदिक काल, रामायण काल, कृष्ण काल व आधुनिक काल) यानि सभी कालखंडों में देश के विभिन्न स्थलों पर हिन्दू धर्मावलंबियों द्वारा वृक्षों की पूजा होती रही है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखे तो आज ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से ग्रस्त, पूरे विश्व ने पेड़ों की महत्ता को नकार दिया है या अपने सुविधा के लिए उन्हे नष्ट कर दिया है। जिसका परिणाम है पर्यावरण की बढ़ती जा रही समस्या।

आज भी ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्रों में यह सख्ती से लागू है। इसका उदाहरण है— बिहार स्थित कैमूर पर्वत-शृंखलाएँ, जो राज्य के सासाराम जिला और झारखंड सीमा पर है— उस सीमा क्षेत्र में बसे दर्जनों गाँव में स्थित पेड़ों को यदि नुकसान पहुंचा दें तो

पंचायत लगाकर उसकी कड़ी सजा दी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में वैदिक काल से आजतक समाज का बहुत बड़ा वर्ग— पेड़ों के संरक्षण व उनके प्रति आस्था, महत्ता के प्रति बेहद संवेदनशीन रहा है। आस्था, महत्ता और उसके बाद उसकी पूजा ही संवेदनशीलता, मन की आंतरिक अनुभूति है, चाहे वह विद्वान हो या निरक्षर ग्रामीण-आदिवासी समुदाय।

राष्ट्रीय स्तर पर आज भी ऐसे कई स्थल हैं जो अपनी पौराणिकता के साथ-साथ पर्यटक स्थल के रूप में चिन्हित हैं। हिन्दू में गहरे आस्था के कारण ही वृक्षों की पूजा — ग्रामदेवता के रूप में, किसी के शुभ जन्म, विवाह और त्योहार के साथ साथ मृत्यु के बाद भी धार्मिक कर्मकांड 'पितृपक्ष की पूजा' इसके बिना संपन्न नहीं मानी जाती।

पद्मपुराण में अक्षयवट को तीन नाम से जाना जाता है — आदिवट, श्यामवट और अक्षयवट। किसी जमाने में दरियाबाद, बलुआघाट से लेकर संगम तक वट के कई प्राचीन वृक्ष हुआ करते थे।

इन वटवृक्षों के अलावा बिहार के बोधगया स्थित बोधिवृक्ष है, जो बौद्ध-धर्मावलंबियों का महत्त्वपूर्ण स्थल है।

## 1. अक्षयवट, गया, बिहार

**लोकेशन** : गया-बोधगया मुख्यमार्ग पर गया से लगभग 3 कि. मी. माड़नपुर चौराहे के समीप स्थित।

**महत्त्व :** माना जाता है कि गया स्थित अक्षयवट का रोपण स्वयं ब्रह्मा ने किया था, जिसे स्वर्ग से लाया गया था। चाहरदिवारी से घीरे, एक विस्तृत पक्के आंगन के मध्य भाग में स्थित, यह वटवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध है।

विष्णुपद मंदिर के ठीक सामने, फल्गु नदी के उस पार, पर्वत की तलहटी में, फल्गु नदी के पूर्वी तट के किनारे, देवघाट के सामने स्थित रामगया सीताकुंड में

**अक्षयवट वेदी, गया, बिहार**

राज्याभिषेक के बाद, श्रीराम, सीता व लक्ष्मण अपने पिता के पितृपक्ष श्राद्ध हेतु जब आये थे तो यहाँ श्राद्धकर्म की पूजा के पूर्व, देवी सीता ने अक्षयवट की पूजा की थी।

आस्था है कि तीनों लोकों में महत्त्व प्राप्त करने वाले वटवृक्ष अक्षयवट के समीप किये गये श्राद्ध एवं पिंडदान अक्षय हो जाते हैं। इसके निकट बटेश्वर महादेव का मंदिर है, जहाँ पर अमावस्या के दिन पिंडदान होता है।

गया में पिंडदान या श्राद्धकर्म का प्रारंभ **फल्गू** से होता है और अंत **अक्षयवट** से। इसके पास ही बटेश्वर महादेव का मंदिर है, जहाँ अमावस्या के दिन पिंडदान का विधान है। श्राद्ध समाप्ति के बाद यहाँ पर गयापाल पंडों द्वारा सुफल विदाई की जाती है।

## 2. पंचपाकड़, सीतामढ़ी, बिहार

**लोकेशन :** सीतामढ़ी नगर से 18 किमी. उत्तर-पूर्व में एन. एच. 104 पर, बथनाहा ब्लॉक में, सीतामढ़ी व शिवहर की सीमा पर स्थित.

**महत्त्व :** यहाँ स्थित श्रीराम-सीता मंदिर पौराणिक महत्त्व का स्थल है। आस्था है कि जनकपुर से विवाह

**पंच पाकड़, सीतामढ़ी, बिहार**

के बाद विदा होकर अयोध्या जाने के क्रम में देवी सीता की डोली यहाँ तब तालाब के किनारे पुराने पाकड़ के पेड़ के नीचे रखी गयी थी और बारात ने वहां पड़ाव डाला था और सीता माता ने यहाँ थोड़ी देर विश्राम किया था.

जनश्रुति है कि यहाँ माता सीता ने मुँह घोकर जिस दातून को फेंका था, वह आज एक विशाल वृक्ष के रूप में विद्यमान है. इस अति प्राचीन वृक्ष की पूजा सदियों से होती रही है। इस स्थल के निकट एक प्राचीन तालाब भी है. यहाँ कई पेड़ों की श्रृंखलाएँ प्राकृतिक रूप से आपस मे मिली हुई हैं, जो अद्भुत लगता है.

**पंच पाकड़, सीतामढ़ी, बिहार**

**अक्षयवट, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश**

## 3. अक्षयवट, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश

**लोकेशन** – प्रयागराज जिला में यमुना नदी के तट पर, अकबर के किले में स्थित।

**महत्त्व** – प्रयागराज (पुराना इलाहाबाद) में यमुना नदी के तट पर, अकबर के किले में एक प्राचीन वटवृक्ष है, जिसका ऐतिहासिक-धार्मिक महत्व है। मानस के अनुसार, भगवान राम और सीता ने वन जाते समय इस वटवृक्ष के नीचे तीन रात तक प्रवास किया था। अपने प्रवास के दौरान माता सीता ने अक्षयवट की पूजा व परिक्रमा की थी।

रामायण में अक्षयवट का उल्लेख है, जिसमें इसका नाम नीलवट के रूप में मिलता है। इसमें किए गए वर्णन के अनुसार वन जाने के समय भगवान श्रीराम जब भारद्वाज आश्रम पहुंचे, तब उन्होंने अक्षयवट का दर्शन किया था। जिसके बाद फिर माता सीता ने भी इस वृक्ष की पूजा कर अपने अक्षय सौभाग्य की प्रार्थना की थी।

कुछ हिंदू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार इस अक्षयवट वृक्ष का संबंध इस सृष्टि के आरंभकाल से है। इसके बारे में मान्यता है कि अक्षयवट नाम के इस वृक्ष को माता सीता ने वरदान दिया था कि जब प्रलयकाल

आएगा और पृथ्वी जलमग्न हो जाएगी, तो इस वृक्ष का एक पत्ता बचा रहेगा। साथ ही इसके बारे में एक मान्यता यह भी है कि श्रीकृष्ण अपने बाल स्वरूप में इसी वटवक्ष पर विराजमान हुए थे।

रामायण के साथ-साथ **पद्मपुराण** में भी अक्षयवट का जिक्र मिलता है। माना जाता है कि जो मनुष्य इस वटवृक्ष की छाया में आ जाता है, वह इस संसार के जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। शास्त्रों में इस अक्षयवट की पूजा के बारे में बताया गया है, जिसमें सबसे पहले संगम स्नान के बारे में उल्लेख है। कहा जाता है कि अपने पितरों के मोक्ष की कामना के लिए जो भी श्रद्धालु श्राद्ध करते हैं, उसकी पूर्णाहुति इसी अक्षयवट के नीचे दी जाती है।

**पातालपुरी मंदिर**- अकबर के किले के अंदर स्थित वटवृक्ष के निकट प्राचीन **पातालपुरी मंदिर** में ब्रह्माजी द्वारा स्थापित शूल टंकेश्वर शिवलिंग स्थापित हैं। यहाँ मुगल सम्राट अकबर की पत्नी जोधाबाई भी जलाभिषेक करती थी।

शूल टंकेश्वर मंदिर में जलाभिषेक का जल सीधे अक्षयवट वृक्ष की जड़ में जाता है। वहां से जमीन के अंदर से होते हुए सीधे संगम में मिल जाता है। ऐसी मान्यता है कि अक्षयवट वृक्ष के नीचे से ही अदृश्य सरस्वती नदी भी बहती है। आस्था है कि संगम स्नान के बाद अक्षयवट के दर्शन और पूजन से वंशवृद्धि से लेकर धन-धान्य की संपूर्णता तक की मनौती पूर्ण होती है।

प्रयाग में स्नान के बाद जब तक अक्षयवट का पूजन एवं दर्शन नहीं किया जाता, तब तक किसी भी श्रद्धालु को पुण्य लाभ नहीं मिलता है।

इस परिसर में अक्षयवट के अलावा 43 देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं। पातालपुरी मंदिर के अंदर अक्षयवट, धर्मराज, अन्नपूर्णा विष्णु भगवान, लक्ष्मीजी, श्री गणेश-गौरी, महादेव, दुर्वासा ऋषि, बाल्मीकि ऋषि, प्रयागराज, बैद्यनाथ, कार्तिक स्वामी, सती अनुसुइया, वरुण देव, दंड पांडे महादेव, कालभैरव, ललिता देवी, गंगाजी, जमुना जी, सरस्वती देवी, नरसिंह भगवान, सूर्यनारायण, जामवंत, गुरु दत्तात्रेय, बाणगंगा, सत्यनारायण, शनिदेव, मार्कंडेय ऋषि, गुप्तदान, शूल टंकेश्वर महादेव, देवी पार्वती, वेणी माधव, कुबेर भंडारी, आरसनाथ-पारसनाथ, हनुमानजी, कोटेश्वर महादेव, राम - लक्ष्मण - सीता, नागवासुकी दूधनाथ, यमराज, सिद्धिविनायक एवं सूर्यदेव की मूर्ति स्थापित है।

मान्यता है कि सृष्टि की रचना को सुरक्षित रखने के लिए भगवान ब्रह्मा ने किले के प्रांगण में स्थित पातालपुरी मंदिर में बहुत बड़ा यज्ञ किया था। इस यज्ञ में पुरोहित के रूप में भगवान विष्णु, यजमान के रूप में भगवान शिव शामिल हुए थे। यज्ञ के पश्चात् इन तीनों देवताओं की शक्तिपुंज से एक वृक्ष उत्पन्न हुआ, जो अक्षयवट के नाम से जाना गया।

ब्रह्माजी ने वटवृक्ष के नीचे पहला यज्ञ किया था। इसमें 33 करोड़ देवी-देवताओं का आह्वान किया गया था। यज्ञ समाप्त होने के बाद ही इस नगरी का नाम प्रयाग रखा गया था, जिसमें 'प्र' का अर्थ प्रथम और 'त्याग' का अर्थ यज्ञ से है।

इसे लेकर कई मान्यताएँ और आस्था भी जुड़ी है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार पृथ्वी पर प्रलय के दौरान जब सब कुछ जलमग्न हो जाता है, उस दौरान भी अक्षयवट वृक्ष को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है। आस्था है कि इसी अक्षयवट के एक पत्ते पर ईश्वर बालरूप में विद्यमान रहकर सृष्टि के अनादि रहस्य का अवलोकन करते हैं। अक्षय शब्द का अर्थ ही होता है, जिसका कभी क्षय ना हो। जबकि वट का अर्थ होता है बरगद। इसे मनोरथ और मोक्षदायक वृक्ष भी कहा गया है।

वर्तमान में सरकार द्वारा अक्षयवट को दर्शन के लिए आम लोगों के लिए खोल दिया गया है। इस

परिसर में दो वटवृक्ष हैं। कुछ लोग किले के भीतर सेना के अधीन वटवृक्ष को ही असली अक्षयवट मानते हैं, जबकि कुछ का मानना है कि पातालपुरी मंदिर स्थित वटवृक्ष की शाखा ही असली अक्षयवट है। माना जाता है कि उस समय अक्षयवट गंगा के पूरब दिशा में था, जबकि इस समय अक्षयवट प्रयागराज किले के अंदर है।

इस वृक्ष का उल्लेख कालिदास के **रघुवंश** तथा चीनी यात्री **ह्वेनत्सांग** ने 644 ई में अपने **यात्रा विवरण** में इसका वर्णन किया था।

**अन्य मान्यता** - प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर स्थित अक्षयवट हिन्दुओं के अलावा जैन और बौद्ध भी इसे पवित्र मानते हैं। आस्था है बुद्ध ने कैलाश पर्वत के निकट प्रयाग के अक्षयवट का एक बीज बोया था। जबकि जैनियों का मानना है कि उनके तीर्थंकर ऋषभदेव ने अक्षयवट के नीचे तपस्या की थी। प्रयाग में इस स्थान को ऋषभदेव तपस्थली (या तपोवन) के नाम से जाना जाता है।

यहाँ संगम तट पर लगे माघ महीने में कल्पवासियों और श्रद्धालुओं का जमघट लगता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार प्रयाग में स्नान के बाद जब तक अक्षयवट का पूजन एवं दर्शन नहीं हो, तब तक लाभ नहीं मिलता है।

**पातालपुरी मंदिर में स्थित अक्षय वट-**

पौराणिक कथाओं के अनुसार जब एक ऋषि ने भगवान नारायण से ईश्वरीय शक्ति दिखाने के लिए कहा था। तब उन्होंने क्षणभर के लिए पूरे संसार को जलमग्न कर दिया। फिर इस जल को गायब भी कर दिया। इस दौरान जब सारी चीजें पानी में समा गई थी, तब अक्षयवट (बरगद का पेड़) का ऊपरी भाग दिखाई दे रहा था।

आज इस किले का इस्तेमाल भारतीय सेना द्वारा किया जा रहा है। जमीन के नीचे बने इस मंदिर में

**पातालपुरी मंदिर में स्थित अक्षय वट**

प्रसिद्ध अक्षयवट है। इस किले में एक सरस्वती कूप भी बना है। जिसके बारे में कहा जाता है कि यहीं से सरस्वती नदी जाकर गंगा-यमुना में मिलती थी।

मोक्ष प्राप्ति के लिए उपयोग - ''अक्षय वटवृक्ष के पास कामकूप नाम का तालाब था। मोक्ष प्राप्ति के लिए लोग यहाँ आते थे और वृक्ष पर चढ़कर तालाब में छलांग लगा देते थे। 644 ईसा पूर्व में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यहाँ कामकूप तालाब में इंसानी नरकंकाल देखकर अपनी किताब में भी इसका जिक्र किया था। उसके जाने के बाद ही मुगल सम्राट अकबर ने यहाँ किला बनवाया। इस दौरान उसे कामकूट तालाब और अक्षयवट के बारे में जानकारी मिली, तब उसने पेड़ को किले के अंदर और तालाब को बंद करवा दिया था।

विरासत सूची में शामिल है अक्षयवट - उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा 53 विरासत वृक्षों की सूची में किला स्थित इस वटवृक्ष को भी शामिल किया गया है। इसकी गोलाई 10 मीटर है। लंबे कालखंड में इस वृक्ष ने गंगा की धारा को बंटते देखा है, जो कभी पूर्वगामी तो कभी पश्चिम वाहिनी प्रवाह होता रहा है।

**ग्रन्थ उल्लेख** - वा.रा. 2/55/23 से 33, मानस 2/109 दोहा से 2/111/1, 2/220/1, 2

## 4. वंशीवट, वृंदावन, उत्तर प्रदेश

लोकेशन – उत्तर प्रदेश राज्य के वृंदावन ज़िले में तहसील मांट मुख्यालय से एक किमी दूर, यमुना किनारे स्थित।

महत्त्व - यह वह स्थान है जहाँ भगवान कृष्ण गोपीनाथ ने (गोपी के भगवान के रूप में) शरद पूर्णिमा (पूर्णिमा की रात) के शुभ दिन पर महारास नृत्य की लीला की थी। वंशी का अर्थ है बांसुरी और वट का अर्थ बरगद वृक्ष है। इसलिए इसे वंशीवट के नाम से जाना जाता है।

इस वट का नाम वंशीवट इसलिये पड़ा कि इसकी शाखाओं पर बैठकर श्रीकृष्ण वंशी बजाते थे और गोपियों को रिझाते थे।

महारास में श्रीकृष्ण अपनी बांसुरी बरगद के वृक्ष के नीचे बजा रहे हैं, दिव्य बांसुरी सुनने पर, गोपियाँ वंशीवट की तरफ दौड़ चली आयी। यहाँ श्रीकृष्ण नित्य ही बांसुरी बजाते थे। श्रीकृष्ण ने गोपियों के लिए कई रूपों को धारण किया। श्रीकृष्ण के लिए गोपियों का इतना गहरा प्रेम था कि उन्होंने श्रीकृष्ण की इच्छा के लिए अपने बच्चों, पतियों और घरों को छोड़ दिया।

रासलीला के दौरान, श्रीकृष्ण ने गोपियों को वियोग दिया और उनसे अलक्षित हो गए। गोपियों ने कृष्ण की खोज शुरू कर दी और जब कृष्ण से अलग होने की उनकी तीव्र भावना पागलपन के चरम बिंदु तक पहुंचने वाली थी, कृष्ण उनके सामने उनके शुद्ध प्यार से प्रभावित होकर आ गये। यह वंशीवट की लीला 5500 वर्ष पुरानी है।

भगवान शिव भी इस स्थान पर महारास के दौरान एक गोपी के रूप में आए थे और इसलिए श्रीकृष्ण ने उन्हें "गोपीश्वर महादेव" नाम दिया।

जब चैतन्य महाप्रभु पहले वृंदावन आए, तो वह केवल वंशी वट आए।

**वंशीवट, वृंदावन, उत्तर प्रदेश**

सूरदास जी ने दिव्य स्थान के लिए एक पद लिखा है -"कहाँ सुख ब्रज कौसो संसार ! कहाँ सुखद वंशी वट जमुना, यह मन सदा विचार।"

जिसका अर्थ है " वंशीवट वृंदावन यमुना के किनारे को छोड़कर दुनिया में कहीं भी कोई सुख नहीं है". इसी स्थान पर रास बिहारी ने तरह-तरह की लीलाएँ कीं थी।

यह भी उल्लेख है कि "वृंदावन की तरह कोई जगह नहीं है, नंद गाँव जैसा कोई गाँव नहीं है, वंशीवट की तरह कोई बरगद का वृक्ष नहीं है, और राधा-कृष्ण की तरह कोई नाम नहीं है".

तहसील मांट मुख्यालय से एक किमी दूर, यमुना किनारे यह स्थान है जहाँ पर कन्हैया नित्य गाय चराने जाते थे। बेणुवादन, दावानल का पान, प्रलम्बासुर का वध तथा नित्य रासलीला करने का साक्षी रहा है।

जब भी श्रीकृष्ण की बात होती है तो सबसे पहले कृष्ण भक्तों के मन उनकी लीलाभूमि वृंदावन का विचार जरूर आता है। कहा जाता है उन्होंने अपने बाल्यकाल में यहाँ अगिनत लीलाएँ की। जिसे देखने आज भी श्रीकृष्ण के भक्त दूर-दूर से वृंदावन की यात्रा करने आते हैं। वृंदावन की यात्रा में भगवान की लीला स्थलियों के दर्शन के साथ ही साथ यहाँ स्थित पावन

घाटों का भी महत्त्व है।

ऐसे में पितृ पक्ष के अवसर पर वृंदावन के पावन घाटों की महत्ता है, जहाँ श्राद्ध आदि कार्य संपन्न होता है। साथ ही साथ इन घाटों का ऐतिहासिक व पौराणिक महत्त्व भी है। माना जाता है यमुना तट की लीलाओं में कालीय मर्दन, चीरहरण लीला, केशी वध लीला प्रमुख हैं। यही कारण है कि राजे-रजवाड़ों ने इन घाटों के महत्त्व को देखते हुए, अपने रियासत काल में पक्के घाटों का निर्माण करवाया था।

वृंदावन में भगवान की लीलाओं का बखान करने वाले 38 घाटों में से अधिकतर घाट अपना अस्तित्व भी खो चुके हैं। जो घाट बचे हैं, वो अपने अस्तित्व से जूझ रहे हैं। केसी घाट, अक्रूर घाट को छोड़ दें तो अधिकांश घाट अब यमुना से बहुत दूर हो गए हैं।

**केशीघाट-** केशी घाट वृंदावन के उत्तर-पश्चिम दिशा में तथा भ्रमर घाट के समीप स्थित है। वर्तमान समय में यह घाट नगर के प्रमुख घाट के रूप में है।

इससे जुड़े पौराणिक उल्लेख के अनुसार कंस ने केशी नामक दानव को भगवान श्रीकृष्ण का वध करने भेजा, जो घोड़े के रूप में यमुना किनारे पहुंचा। मगर भगवान श्रीकृष्ण ने उसे पहचान लिया और उसका वध कर दिया। इस घटना के बाद से ही इस घाट का नाम केशीघाट पड़ गया। मान्यता है कि यहाँ पिंडदान करने से गया में किए गए पिंडदान के समान फल मिलता है।

## 5. गृद्धवट, सोरों शूकरक्षेत्र, उत्तर प्रदेश

लोकेशन – राज्य के कासगंज जिले से 16 किलोमीटर दूर सोरों सूकर क्षेत्र में स्थित। (यहाँ पहुंचने के लिए बस और रेल मार्ग दोनों ही साधन हैं ).

महत्त्व – यह गंगा नदी के समीप स्थित पुराण प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। यहाँ स्थित गृद्धवट तीर्थ है, जहाँ आदिकालीन विश्व का प्राचीनतम वटवृक्ष गृद्धवट विद्यमान है।

**गृद्धवट, सोरों शूकरक्षेत्र, उत्तर प्रदेश**

**कूर्मपृष्ठीय श्रीयंत्र** - इसी गृद्धवट तीर्थ के वर्तमान प्रांगण में 'श्री' विद्या का यांत्रिक स्वरूप संभवतः विश्व की एकमात्र कृति है।'कूर्मपृष्ठीय श्रीयंत्र' का यह स्वरूप कहीं और देखने को नहीं मिलता। इसकी प्रतिष्ठा आदि शंकराचार्य जी ने की थी।

## 6. सिद्धवट, उज्जैन, मध्य प्रदेश

लोकेशन - मध्य प्रदेश राज्य के उज्जैन ज़िले के भैरवगढ़ ग्राम में क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित।

महत्त्व - वाराहपुराण में वर्णित 6 प्राचीन वटवृक्षों में - उज्जैन, मध्य प्रदेश में स्थित पवित्र 'सिद्धवट' भी शामिल है।

वैशाख मास में कर्मकाण्ड, मोक्ष कर्म, पिण्डदान एवं अंत्येष्टि के लिए यह प्रमुख स्थान माना जाता हैं। नागबलि, नारायण बलि-विधान प्राय: यहाँ होता है। हिंदू पुराणों में इस स्थान की महिमा का वर्णन किया गया है।

यहाँ तीन तरह की सिद्धि होती है – सन्तति, संपत्ति और सद्गति। तीनों की प्राप्ति के लिए यहाँ पूजन किया जाता है। सद्गति अर्थात पितरों के लिए अनुष्ठान किया जाता है। संपत्ति अर्थात लक्ष्मी कार्य के लिए वृक्ष पर रक्षा सूत्र बाँधा जाता है और सन्तति अर्थात पुत्र की प्राप्ति के लिए उल्टा सातिया (स्वस्तिक) बनाया जाता है।

सिद्धवट उज्जैन

यह वृक्ष तीनों प्रकार की सिद्धि देता है इसीलिए इसे सिद्धवट कहा जाता है। यहाँ पर कालसर्प शांति का विशेष महत्त्व है, इसीलिए कालसर्प दोष की भी पूजा होती है।

**स्कंद पुराण** के अनुसार वनवास के दौरान भगवान राम, मां सीता और लक्ष्मण के साथ अपने मृत पिता दशरथ का यहीं तर्पण व श्राद्ध किया था। जिस प्रकार से गया में तर्पण का फल प्राप्त होता है। यही कारण है कि पूरे देश भर से श्रद्धालु उज्जैन में पूर्वजों की मुक्ति के लिए आते हैं।

स्कंद पुराण अनुसार सिद्धवट को पार्वती माता द्वारा लगाया गया था, जिसकी शिव के रूप में पूजा होती है। धार्मिक मान्यता है कि जब माता पार्वती ने यहाँ तपस्या की थी, तब उन्होंने ही इस सिद्धवट को लगाया था। पार्वती के पुत्र कार्तिक स्वामी को यहीं पर सेनापति नियुक्त किया गया था। यहीं उन्होंने तारकासुर का वध किया था। वर्तमान में इस सिद्धवट को कर्मकांड, मोक्षकर्म, पिंडदान, कालसर्प दोष पूजा एवं अंत्येष्टि के लिए प्रमुख स्थान माना जाता है। मुगल शासन काल में इस सिद्धवट को नष्ट करने के कई बार प्रयास किए गए थे।

**तर्पण और पिंड** - धर्मशास्त्रों में **अवंतिका** नगरी के नाम से मशहूर उज्जैन शहर में श्राद्ध पक्ष के आरंभ होते ही, देश के कोने-कोने से लोगों का आना शुरू हो जाता है। मोक्षदायिनी शिप्रा नदी के किनारे स्थित सिद्धवट घाट पर श्रद्धालु अपने पूर्वजों के लिए तर्पण और पिंडदान कराने पंहुचते हैं। यहाँ लोग प्राचीन वटवृक्ष का पूजन-अर्चन कर पितृ शांति के लिए प्रार्थना करते हैं।

सिद्धवट पर पितरों के निमित्त कर्मकांड और तर्पण का यह कार्य 16 दिनों तक चलता है। पितृ मोक्ष हेतु श्रद्धालु इन 16 दिनों की विभिन्न तिथियों में ब्राह्मण को

भोजन दान, गाय दान, कौओं को भोजन कराया जाता हैं। मान्यता है कि उज्जैन में श्राद्ध करने से पितरों को बैकुंठ धाम की प्राप्ति होती है।

ऐतिहासिक महत्त्व - उज्जैन अवंतिका नगरी बाबा महाकाल के नाम से जानी जाती है। सतयुग से बाबा महाकाल के रूप में शिव का यहाँ पर आगमन हुआ था और सतयुग से ही तर्पण श्राद्ध के लिए यह जगह जानी जाती है। जब उनकी सेना भूत-प्रेत पिशाच ने उनसे अपने मुक्ति का स्थल मांगा था तो शिव ने उन्हें सिद्धवट क्षेत्र पहुंचाया था। तब से सिद्धवट को भूत-प्रेत पिशाच को मुक्ति की प्रेत शिला के रूप में जाना जाता है।

यहाँ पर श्राद्ध कराने आए लोगों की 500 साल पुरानी वंशावली तीर्थ पुरोहितों के पास है। उज्जैन के अधिकांश तीर्थ पुरोहितों के पास पूर्व के अनेक परिवार के पूर्वजों के नामों की पोथी बनी हुई है। यहाँ 400 से 500 साल पुराने पूर्वजों के रिकॉर्ड भी उपलब्ध हैं। उज्जैन शहर में 12 पंडे प्रमुख हैं, जो श्राद्ध पक्ष में पूजन करवाते हैं। जिसमें तर्पण, विष्णु पूजा, देव पूजा, ऋषि मनुष्य और पितृ तर्पण आदि की पूजन होता है। इसके अलावा 300 से अधिक पंडित इन दिनों में रामघाट, सिद्धवट घाट, गया कोठा सहित अन्य जगहों पर पूजन करवाते हैं। यहाँ पूजन की विधि में सम्पत्ति के लिए दूध, सन्तति सन्तान के लिए और सद्गति के लिए श्राद्ध तर्पण किया जाता है।

सिद्धावट के पास, भैरगढ़ गाँव सदियों से अपनी टाई और डाई पेंटिंग के लिए प्रसिद्ध है।

चौदस मेला - वैसे तो प्रतिदिन सिद्धवट पर दर्शन और दूध चढ़ाने के लिए हजारों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं, लेकिन चौदस पर यहाँ पूजा का विशेष महत्त्व माना जाता है।

पवित्र नदी शिप्रा के तट पर स्थित सिद्धवट घाट पर अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इसके अलावा नाथ संप्रदाय में भी इसे पूजा का स्थान माना गया है।

पुरातात्विक महत्त्व - पुरातात्विक दृष्टिकोण से भी उज्जैन का सिद्धवट मंदिर महत्त्व रखता है, क्योंकि शिप्रा के तट पर स्थित मंदिर के पास नदी में बड़ी तादाद में कछुए पाए जाते हैं। इसके अलावा उज्जैन से प्राप्त हुए प्राचीन सिक्कों में भी नदी के साथ कछुओं के चित्र अंकित किए हुए मिले हैं।

## 7. पंचवट, नासिक, महाराष्ट्र

लोकेशन – पंचवटी भारत के महाराष्ट्र राज्य में नाशिक शहर के उत्तर-पश्चिम में, 2 कि. मी. की दूरी पर, गोदावरी नदी के तट पर, स्थित।

महत्त्व - हिन्दू महाकाव्य रामायण में वर्णित पंचवटी में पांच बरगद के पेड़ों का समूह है, जहाँ भगवान राम ने माता सीता और लक्ष्मण के साथ अपने वनवास का कुछ समय व्यतीत किया था। जिन्हें पंचवट के नाम से जाना जाता है। पंचवटी में पांच बरगद के पेड़ होने की वजह से इस स्थान का नाम पंचवटी पड़ा।

पंचवटी वही स्थल हैं जहाँ सीता हरण हुआ था। रामायण में वर्णित पंचवटी की कथा में नासिक का नाम "नाशिका" अर्थात नाक से लिया गया है। नासिक वह स्थान है, जहाँ लक्ष्मण ने शूर्पनखा की नाक और कान काटे थे।

रामायण के अनुसार भगवान राम को जब माता कैकई के कहने से 14 वर्ष का वनवास मिला, तब श्रीराम ने अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ सर्वप्रथम पंचवटी में ही निवास किया था।

## 8. बोधिवृक्ष स्थल, गया, बिहार

लोकेशन : महाबोधि मंदिर से सटे, पश्चिम की ओर स्थित।

महत्त्व : बोधिवृक्ष स्थल पर राजकुमार सिद्धार्थ

(गौतम बुद्ध) को 35 वर्ष की आयु में दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होने 29 वें वर्ष में सन्यास ग्रहण किया था।

इस स्थल पर गौतम बुद्ध 49 दिनों तक समव्यवस्थित रहे थे। उन्होंने बुद्धत्त्व प्राप्ति के बाद प्रथम सप्ताह इसी वृक्ष के नीचे बिताया था। बाकी छह सप्ताह गौतम बुद्ध ने भिन्न-भिन्न जगहों पर समाधि व ध्यान में बिताया। यह स्थल बौद्ध धर्मावलंबियों व अन्य श्रद्धालुओं के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक, धार्मिक स्थल हैं।

वंशक्रम में यह चौथा बोधिवृक्ष है। अतीत में महाबोधि वृक्ष पर कई बार संकट गहराये। कहा जाता है कि बोधिवृक्ष को सर्वप्रथम सम्राट अशोक की रानी तिष्यरक्षिता ने 273 ई०पू० - 239 ई०पू० में हानि पहुंचाने की कोशिश की थी।

फिर 7वीं सदी के आरंभ में इस स्थान पर संकट उस समय आया - जब मध्य बंगाल के गौड नरेश शशांक वर्मन ने 601 ई. में इस वृक्ष को नष्ट करने की कोशिश की थी। बाद में मगध के राजा पूर्ण वर्मा, जो सम्राट अशोक के वंशज थे, ने 620 ई. में फिर से पूर्व की स्थिति को बहाल किया.

कनिंघम की कृति 'महाबोधि' से से पता चलता है कि पाल नरेश धर्मपाल के एक शिलालेख (1850 ई.)

में बोधिवृक्ष का यशोगान किया गया है। 1870 ई० में आंधी के कारण यह वृक्ष उजड़ गया था, जिसे तुरंत कार्रवाई कर बचाया गया। सन् 1881 ई० में जनरल कनिंघम ने श्रीलंका के अनुराधपुर से एक शाखा लाकर बोधिवृक्ष के वास्तविक स्थल पर लगवाया, कि वर्तमान बोधिवृक्ष है. बाद में बर्मा नरेश अनिरूद्ध के पुत्र क्यांगजित्था के काल में हुए निर्माणकाल के अंतर्गत बोधिवृक्ष के चारो ओर अलंकृत स्तंभ लगाये गये थे।

ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार, प्राग्बोधि पर्वत (वर्तमान डुंगेश्वरी पर्वत) पर साधना आगे जारी रखने से मनाही हो जाने के बाद गौतम, देवताओं का सुझाव मानकर, वैशाख पूर्णिमा के सांयकाल में बोधगया के बोधिवृक्ष के नीचे आये थे। उन्होंने बोधिवृक्ष को पीठ की ओर करके पूर्वाभिमुख होकर सम्यक सम्बोधि को प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो अपराजित आसन लगाकर बैठ गये। मार (माया) को अपनी पारमिताओं के द्वारा पराजित करने के बाद बोधिसत्त्व गौतम ने रात्रि के प्रथम चरण में पूर्व जन्मों का ज्ञान, मध्य चरण में दिव्य चक्षु पाकर, अंतिम चरण में प्रतीत्यसमुत्पाद-ज्ञान को प्राप्त किया। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम एवं प्रतिलोम मनन किया था। यहाँ बोधिप्राप्ति के बाद सिद्धार्थ गौतम भगवान बुद्ध कहलायें।

16 जनवरी 1993 ई० को श्रीलंका के तत्कालीन राष्ट्रपति रणसिंह प्रेमदासा द्वारा 'स्वर्ण जंगला' व 'स्वर्ण छतरी' - महाबोधि वृक्ष के नाम समर्पित किये गये थे।

इस पवित्र वृक्षस्थल के निकट, 'भगवान बुद्ध की 80 फीट ऊंची - भव्य प्रतिमा स्थापित की गयी है, जिसका अनावरण सन् 1989 ई० में 'दलाईलामा' द्वारा किया गया था। इस मूर्ति के निर्माण में चार वर्ष का समय लगा। मूर्ति की ऊंचाई 64 फीट, कमल की ऊंचाई 6 फीट व आधार की ऊंचाई 10 फीट है। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध मूर्तिकार गणपति सथाली ने मूर्ति का नक्शा बनाया व कलकत्ता निवासी दासगुप्ता ने मूर्ति का मॉडल तैयार किया था। इस मूर्ति को बनाने में चुनार से पत्थर लाया गया था।

***

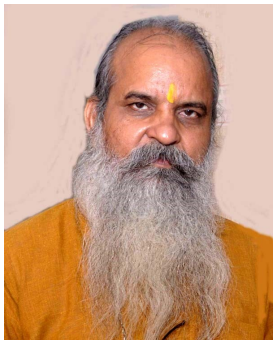

# लङ्केश रावण में भी बसे थे प्रभु श्रीराम

**(धारावाहिक रामायण के रावण चरित्र अभिनेता श्री अरविन्द त्रिवेदी से साक्षात्कार के कुछ अंश)**

**डा. विनोद बब्बर**

अविभाजित पंजाब में 1950ई. जन्मे संन्यासी साहित्यकार, पत्रकार, हिन्दीसेवी एवं राष्ट्रवादी चिन्तक। 'युगे युगे राम', 'महाभारत और आज', 'संस्कृति सेतु', 'प्रताप महान', 'मॉरिशस का इतिहास', 'भगीरथ के देश में', 'जालियाँवाला बाग की गूँज' आदि 36 पुस्तकें प्रकाशित, 6 प्रकाशनाधीन, 7 पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद। आपके साहित्य पर 6 शोधकार्य हुए हैं। सम्प्रति : ए-2/9ए, हस्तसाल रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली-59.

**यह पिछले रामलीला विशेषांक सम्बद्ध आलेख है। हमारी परम्परा में इष्टदेव की लीला का अनुकरण भक्ति नौ रूपों में से कीर्तन तथा श्रवण के भेद के रूप में महिमामण्डित है। इनमें यदि रामलीला के दर्शक श्रवण करते हैं तो अभिनेता भी कीर्तन के पुण्य के भागी होते हैं। इन अभिनेताओं में से न केवल आदर्श पात्र बल्कि खल-पात्र भी समान पुण्य के भागी होंगे, क्योंकि नाट्यशास्त्र की दृष्टि से वे सभी अन्ततः आराध्य चरित के लिए आलम्बन एवं उद्दीपन विभाव बन जाते हैं। अतः रंगमंच पर जितने भी अभिनेता, सहायक आदि होते हैं वे सभी आराध्य की लीला के सहभागी हो जाते हैं। रामानन्द सागर द्वारा निर्मित रामायण धारावाहिक ने यद्यपि रंगमंचीय रामलीला को समाप्त कर दिया, किन्तु इलैक्ट्रॉनिक माध्यम से रामकथा को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया। आइए जानते हैं कि इस धारावाहिक में रावण की भूमिका निभानेवाले अरविंद त्रिवेदी क्या कहते हैं?**

**विश्व प्रसिद्ध दूरदर्शन धारावाहिक रामायण का दौर किसे स्मरण न होगा जब प्रसारण के समय सड़कें वीरान हो जाती थी। रामायण धारावाहिक जैसी लोकप्रियता दुर्लभ है। गुजराती फिल्मों के सुप्रसिद्ध अभिनेता और बाद में गुजरात से ही साबरकांठा लोकसभा क्षेत्र से सांसद अरविन्द त्रिवेदी (लंकेश) से एक खास मुलाकात।**

इस धरा पर जीवन चक्र अनंत काल से अविरल घूम रहा है। सच कहें तो यह संसार एक रंगमंच है और हम सब अपने प्रारब्ध और परिस्थितियों के अनुसार अभिनय करते है। इसी अभिनय में कोई इतिहास बनाता है तो कोई खुद ही इतिहास बन जाता है। अच्छे पात्र का अभिनय करने पर श्रद्धा और सम्मान मिलना आम बात है लेकिन इतिहास के एक ऐसे पात्र जिसे हर साल हजारों-लाखों जगह जलाया जाता हो, उसका अभिनय करने वाले को श्रद्धा और सम्मान प्राप्त होना

असाधारण है। जी हां, हमारा अभिप्राय लंकेश उर्फ अरविंद त्रिवेदी से ही है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण पुलस्त्य मुनि के पुत्र विश्वश्रवा का पुत्र था। विश्वश्रवा की वरवर्णिनी और कैकसी नामक दो पत्नियाँ थीं। वरवर्णिनी ने कुबेर को जन्म दिया तो कैकसी रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण की माता थी। रावण में कितना ही राक्षसत्व क्यों न हो, उसके गुणों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। रावण एक अति बुद्धिमान ब्राह्मण तथा शंकर भगवान का बहुत बड़ा भक्त था। वह महा तेजस्वी, प्रतापी, पराक्रमी, रूपवान तथा विद्वान था। रावण में शिष्टाचार और ऊँचे आदर्श वाली मर्यादायें भी थीं। राम के वियोग में दुःखी सीता से रावण ने कहा है, 'हे सीते! यदि तुम मेरे प्रति काम-भाव नहीं रखती तो मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकता।' रावण ने अपनी भक्ति से भगवान शिव को भी प्रसन्न कर दिया था। रावण जानता था कि उसका अंत निश्चित था इसलिए उसने अपने मोक्ष के लिए भगवान राम के हाथों मरने का सारा जाल फैलाया था। रावण वध को लोग बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक मानते हैं, इसलिए पूरे देश में हर साल इसका पुतला जलाया जाता है।

सामान्यजन की दृष्टि में बेशक रावण श्रीराम को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता था। निश्चित रूप से संन्यासी वेश में सीता-हरण निन्दित कर्म था लेकिन यह भी स्मरणीय है कि वह सीता-हरण कर उन्हें अपने महल में नहीं ले गया। उन्हें स्त्रियों के पहरे में अशोक वाटिका में रखा। वह अकेला कभी नहीं गया। जब भी वहां गया अपनी पत्नी मंदोदरी व अन्य दासियों को लेकर गया। उसने साम, दाम, भय और भेद दिखाया, लेकिन जोर-जबरदस्ती नहीं की। महाकवि सूरदास ने अपने काव्य सूरसागर में रावण को प्रभु श्रीराम का परम भक्त बताया है। रावण को एक राक्षसी ने अवगत कराया कि सीता सती है और वह किसी भी हालत में अपना सत् छोड़ने को तैयार नहीं है। सीता तुम्हारी नहीं हो सकती। तुम सीता की चाह छोड़ दो। राक्षसी की बात सुन कर राम भक्त रावण कहता है –

**"मोसे मुग्ध महापापी कौं कौन क्रोध करि तारै?**
**ये जननी वै प्रभु रघुनंदन, हौं सेवक प्रतिहार।**
**सीता-राम सूर संगम बिन कौन उतारे पार?"**

विचारणीय है कि महापापी रावण, सीता-रामजी की कृपा से इस भवसागर को पार करना चाहता है। भवसागर से पार उतरने के लिए ही रावण ने जननी (सीता माता) का हरण किया और एक संन्यासी की तरह उनके शील की रक्षा भी की।

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं 'रावण को देखते ही राम मुग्ध हो जाते हैं और कहते हैं कि रूप, सौन्दर्य, धैर्य, कान्ति तथा सर्वलक्षणयुक्त होने पर भी यदि इस रावण में अधर्म बलवान न होता तो यह देवलोक का भी स्वामी बन जाता।'

कभी गुजराती फिल्मों के लोकप्रिय स्टार रहे अरविंद त्रिवेदी ने 250 फिल्मों में काम किया। गुजराती के अतिरिक्त प्रेमबन्धन और पवित्र पापी जैसी हिन्दी फिल्मों में भी अपनी अभिनय प्रतिभा का प्रदर्शन किया। प्रसिद्ध निर्माता निर्देशक रामानंद सागर की रामायण के लंकेश उर्फ अरविंद त्रिवेदी रामभक्त हैं। उनके साबरकाठा जिला के इडर स्थित निवास 'अन्नपूर्णा' में राम मंदिर है। जहाँ एक पुजारी स्थायी रूप से रहता है। लंकेश हर रामनवमी को विशाल आयोजन करते हैं तो निकट के प्रसिद्ध अम्बाजी तीर्थ जानेवाले पैदल भक्तो के भोजन और विश्राम ही नहीं, दवा की व्यवस्था भी उनके निवास पर रहती है। यह संयोग नहीं, बल्कि उनकी रामभक्ति का प्रमाण है कि पश्चिमी मुंबई के कांदीवली स्थित उनके निवास का नाम भी 'पंचवटी' है।

हिम्मतनगर (गुजरात) एक प्रकार से मेरा दूसरा घर है। आचार्य स्वामी गौरांगशरण देवाचार्य के आश्रम

में लंकेश से भेंट हुई तो उन्होंने अपने निवास पर आमंत्रित किया।

बेशक बढ़ती आयु के कारण शरीर सशक्त नहीं रहा लेकिन मानसिक रूप से अरविन्द भाई पूरी तरह से स्वस्थ हैं। आवाज में वहीं खनक, स्मरण शक्ति बेजोड़। रामचरित मानस, कम्ब रामायण, राधेश्याम रामायण, वाल्मीकि रामायण, आनंद रामायण सहित अनेक ग्रन्थ उन्हें कण्ठस्थ हैं। आज भी जब लंकेश शिवताण्डव स्तोत्र का सस्वर गायन करते हैं तो वातावरण में ओज का संचार होने लगता है। 1991 से 96 तक साबरकाठा के सांसद रहे श्री अरविंद त्रिवेदी ने इस साक्षात्कार में अनेक ऐसे रहस्यों से पर्दा हटाया जो उनकी छवि के बिल्कुल अलग हैं। प्रस्तुत है इस साक्षात्कार के मुख्य अंश—

**वि. ब.— आप अपने बचपन के बारे में कुछ बतायें। क्या आपको शुरू से ही अभिनय में रुचि थी?**

अ.त्रि.— हमारे पूर्वज गुजरात के साबरकाठा जिले के कुकडिया गाँव के निवासी थे। मेरे पिता श्री जेठा लाल त्रिवेदी उज्जैन की एक मिल में मैनेजर थे। हमारा परिवार बहुत संस्कारी था। मेरा जन्म 1938 में इन्दौर में हुआ। वहीं बचपन बीता। यदा-कदा अपने गाँव आते थे। मेरे बड़े भाई भालचन्द जी मुंबई में नौकरी करते थे। हालांकि उनका अभिनय की दुनिया से कोई संबंध नहीं था,लेकिन उन्हीं के कारण मेरे मंझले भाई उपेन्द्र भाई और मैं मुंबई पहुचे। सबसे पहले उपेन्द्र भाई फिल्मी दुनिया में आए। मैंने शुरू में मुंबई थियेटर में काम किया। आरंभिक गुजराती फिल्मों को छोड़ दें तो मैंने वीर मांगड़ा वाला, नरसी भक्त जैसे भक्ति फिल्मों में अभिनय किया। कुछ हिन्दी फिल्मों में भी काम किया।

**वि. ब. — क्या आपने अभिनय का कोई प्रशिक्षण प्राप्त किया है?**

अ.त्रि.— मेरे ख्याल से अभिनय एक जन्मजात गुण है। उसे पैदा नहीं किया जा सकता। हां, थोड़ा बहुत तराशा जरूर जा सकता है। स्कूल के दिनों में मेरा दोस्त ईश्वर लाल सोनी गुरु और मैं चेला बनकर परोडी किया करते थे। ईश्वर भाई बेशक अभिनेता नहीं है परंतु फिर भी हम आज भी अच्छे दोस्त है। मुझे भक्ति संगीत, शास्त्रीय संगीत में बहुत रुचि रही है।

**वि. ब. —धारावाहिक रामायण में रावण बनने का अवसर कैसे मिला?**

अ.त्रि.— मैं रामानंद सागर की हिन्दी फिल्म प्रेमबन्धन में काम कर चुका था। उन्होंने रामायण के लिए लगभग 500 लोगों का टेस्ट लिया। संयोग से मुझे चुन लिया गया। हालांकि शुरू में मेरे मन में कुछ अनिश्चय की स्थिति थी लेकिन उपेन्द्र भाई ने मुझे कहा — 'अरविन्द तुम्हारा जन्म ही रावण बनने के लिए हुआ है।'

**वि.ब. —आप रामभक्त हैं लेकिन रावण का अभिनय करते हुए आप कैसा अनुभव करते थे?**

**अ.त्रि.**— वैसे तो रावण भी रामभक्त था। जहाँ तक मेरा प्रश्न हैं। हर बार शूटिंग शुरू होने से पहले मैं रामजी से क्षमा याचना करता, 'प्रभु अभी सेट पर जाकर आपके बारे में कुछ गलत भी कहूँगा लेकिन मुझे माफ़ करना।' मेरे ख्याल से रावण आज के तथाकथित 'ईमानदार' जनसेवकों से बेहतर था। तमिल की कम्ब रामायण के अनुसार जब रावण मृत्युशैय्या पर था तो श्रीराम ने एक बाण छोड़ते हुए उससे कहा— जाओ जाकर देखो क्या रावण के हृदय में सीता है।' प्रभु के आदेश से रावण के हृदय की जांच करके लौटे बाण ने बताया कि वहां सीता नहीं है। स्पष्ट है कि रावण हृदय से पवित्र और नीतिवान था। वह निष्ठुर भी नहीं था। हाँ, उससे कुछ भूल अवश्य हुई। प्रथम रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि रावण को चारों वेदों का विश्वविख्यात

ज्ञाता और महान विद्वान बताते हैं। वे हनुमान के रावण के दरबार में प्रवेश के अवसर पर अपनी रामायण में कहते हैं–

"अहो रूपमहो धैर्यमहोत्सवमहो द्युतिः।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता॥"

रावण उसूलों वाला था। वह घोर तपस्या करने वाला और नियमों का पालन करने वाला था। उससे बड़ा शिव भक्त कौन हो सकता है? एक बार महिला के प्रति बढ़ते अपराधों पर चर्चा के दौरान एक युवती का यह कहना कि हमें रावण जैसे भाई की जरूरत है जो अपनी बहन की इज्जत के लिए परमात्मा तक से भिड़ जाए।

**वि.ब. – लंकेश का अभिनय करते हुए क्या कभी आप भावुक अथवा विचलित भी हुए?**

अ.त्रि.– मैं रामायण का अभिनय करने से पहले बहुत अच्छी तरह से अभ्यास करता था। अनेक बार रात में जागकर संवाद याद करता। उस दौरान तो मैं रावण का ही जीवन जीता रहा। इन्द्रजित के वध के समय मैं बहुत भावुक हो उठा था। मुझे लगा कि अब मेरा भी अंत हो गया है। अगले दिन राम-रावण युद्ध का फिल्मांकन था। श्रीराम ने रावण का रथ, अस्त्र आदि नष्ट कर दिये। इसी बीच सूर्यास्त हो गया। युद्ध रुक गया। मुझे वापस अपने महल लौटना था। बेशक यह सब अभिनय था लेकिन भारी कदमों से पैदल वापस लौटते हुए मेरी मनोदशा किसी पराजित योद्धा जैसी ही थी। वैसे मैं अपने अभिनय से पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मुझ पर श्रीराम जी की कृपा तो है ही रावण की कृपा भी रही है। यदि मेरा अभिनय खराब होता तो उसकी भी बदनामी होती।

**वि.ब. –इतने लम्बे समय तक अभिनय से जुड़े रहने के बावजूद आप किसी व्यसन के शिकार नहीं हुए, इसका क्या कारण रहा?**

अ.त्रि.– 1952 में जब में मात्र 14 वर्ष का था पिताजी का स्वर्गवास हो गया। मेरी माता बहुत धार्मिक थी। मैं रामभक्त था। भक्ति में बहुत शक्ति है। भक्ति का स्पर्श पाकर मिष्ठान प्रसाद बन जाता है। प्रवाह में भक्ति जुड़ जाए तो तीर्थयात्रा हो जाता है। यह रामजी की कृपा रही कि मैं विपरीत वातावरण में रहते हुए भी व्यसनों से दूर रहा।

**वि.ब. – राजनीति में कैसे आना हुआ?**

अ.त्रि. – मेरी राजनीति में कभी कोई रूचि नहीं थी। मैं तो अकारण आया और अकारण ही लौट गया। जब प्रस्ताव मिला तो अपने पूर्वजों के क्षेत्र के लोगों की सेवा का अवसर जानकर मैंने इसे स्वीकार कर लिया। मुझसे जो संभव हुआ मैंने करने की कोशिश की। वैसे अभिनय मेरी पहली पसंद रही है। जो मैं जो कुछ हूं अभिनय के कारण हूं। आज भी पूरे देश में इतना प्यार मिलता है कि जो किसी बड़े-बड़े पूंजीपति अथवा नेता को मिल ही नहीं सकता। स्वयं अटल जी भी मेरे अभिनय के प्रशंसक रहे हैं।

**वि.ब. – आज जिस तरह से उपसंस्कृति बढ़ रही है। युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट किया जा रहा है, तब देश के भविष्य बारे में क्या सोचते हैं?**

अ.त्रि.– मैं निराशावादी नहीं हूं। आज देश में राजनीति ही नहीं हर क्षेत्र में बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। ये अकारण नहीं है। यह सब प्रभु की कोई योजना है। सब अच्छा होगा। हमारी युवा पीढ़ी हमारी शक्ति है। सकारात्मक दिशा मिलते ही वे चमत्कार कर दिखायेंगे। देश और समाज का भविष्य उज्ज्वल है। भारत फिर से विश्वगुरु बनेगा।

**वि.ब. –अभिनय के विषय में आपकी पत्नी का क्या मत रहा हैं?**

अ.त्रि. –मेरी पत्नी बहुत अच्छे स्वभाव की थी। उसे मेरे अभिनय से कभी कोई आपत्ति नहीं हुई। हाँ, राजनीति को वह भी पसंद नहीं करती थी। वह भी

रामभक्त थी। उसी की इच्छा था कि इडर वाले घर में भगवान राम की मूर्ति स्थापना की जाए। उसका स्वर्गवास हो गया तो मैंने उसकी अंतिम इच्छा को पूर्ण करने का संकल्प किया। विश्व विख्यात मुरारी बापू ने स्वयं इस मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा की। वैसे तो मैं मुंबई में रहता हूं पर अक्सर इडर भी आता रहता हूं।

**वि.ब.— आपके इस निवास का नाम 'अन्नपूर्णा' है। इसका कोई विशेष कारण?**

अ.त्रि. — हाँ, 'अन्नपूर्णा' हमारी कुल देवी हैं। सब उसी की कृपा का परिणाम है। घर में उनकी प्राण-प्रतिष्ठा पहले से ही है।

**वि.ब. — आप स्वयं को 'लंकेश' कहलाना पसंद करते हैं। रावण की कौन सी बात आपको सर्वाधिक प्रभावित करती है?**

अ.त्रि. — रावण में एक नहीं, अनेक गुण थे। मृत्युशैय्या पर पड़े रावण से शिक्षा ग्रहण करने आये लक्ष्मण को उसने कहा— 'अच्छे काम में देर मत करना और बुरे काम में जल्दी मत करना। मैं स्वयं स्वर्ग तक सोने की सीढ़ी बनाने जैसे नेक कार्य को टालता रहा लेकिन सीता हरण में जल्दबाजी का फल भोग रहा हूं।'

**वि.ब. — यदि ईश्वर आपसे अगले जन्म में राम या रावण बनने के बारे में इच्छा पूछे तो आप क्या चाहेगे?**

अ.त्रि. — मेरी कोई इच्छा नहीं। प्रभु की इच्छा।

**वि.ब. — यदि प्रभु स्वयं आपकी इच्छा पूछे तो आप क्या बनना चाहेगे?**

अ.त्रि. — रावण ताकि पिछली गलती को सुधार सकूं।

**वि.ब. — आप स्वयं को किस रूप में याद किया जाना पसंद करेंगे— एक सांसद के रूप में, जनसेवक के रूप में, 250 गुजराती फिल्मों के लोकप्रिय अभिनेता के रूप में या रावण के रूप में?**

अ.त्रि. —केवल एक इंसान के रूप में।

**वि.ब. — आप गुजराती फिल्मों के महानतम अभिनेताओं में शामिल रहे हैं लेकिन जो लोकप्रियता आपको रामायण धारावाहिक के कारण मिली है क्या वह हिन्दी के बिना संभव थी?**

अ.त्रि. — निश्चित रूप से हिन्दी इस देश की एकता की सबसे मजबूत कड़ी है। गुजराती मेरी मातृभाषा है लेकिन हिन्दी मेरी मातृभूमि की भाषा है। मेरी पूज्य माताजी बहुत अच्छी हिन्दी जानती थीं। मैंने दसवीं कक्षा तक संस्कृत भी पढ़ी है। देश के हर व्यक्ति को हिन्दी सीखनी चाहिए।

**वि.ब. — रामानंद सागर जी के विषय में कुछ कहना चाहेंगे?**

अ.त्रि. — महर्षि वाल्मीकि रचित संस्कृत रामायण एक वर्ग तक सीमित रही। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से उसे देश के जन-जन तक पहुंचाया लेकिन रामानंद सागर ने उसे देश ही नहीं, दुनिया के हर कोने तक पहुंचाया। मुझे भी इसी कारण देश-विदेश में बहुत प्यार मिला।

**वि.ब. — वर्षो से देखता हूं आप रुद्राक्ष की मालाएँ पहनते हैं, इसकी कोई खास वजह?**

अ.त्रि. — ये मेरा श्रृंगार है। श्रृंगार ऐसा होना चाहिए जिसे कोई न उतारे। सोना, चांदी तो उतार लिए जाएँगे लेकिन रुद्राक्ष मेरे साथ रहेगी।

**वि.ब. — श्रेष्ठ अभिनय के लिए आपको अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुए होंगे। सबसे बड़ा पुरस्कार कौन सा था?**

अ.त्रि. — देश के हर व्यक्ति ने मुझे जो प्यार दिया वह किसी भी पुरस्कार से बहुत बड़ा है। मैं सभी के प्रति नतमस्तक हूँ। मेरा सब कुछ इस देश के प्रति न्योछावर है।

# श्री जगन्नाथ-रघुनाथ की संयुक्त आरती

श्री घनश्याम दास 'हंस'

आरती कीजै जगन्नाथ की,
राघवानन्द रघुनाथ की
श्री वासुदेव गोपिनाथ की,
आरती कीजे जगन्नाथ की॥ टेक॥

आषाढ़ सुदि दोज रुक्माना,
शाक हेतु रुठे भगवाना।
रुठे हरि को मनावन आयें।
बहन सुभद्रा राम विलमायें॥

रहें प्रवास कृपानिधाना,
बनें अतिथि रमानाथ की।
आरती कीजे जगन्नाथ की,
राघवानन्द रघुनाथ की॥

राजभोग तुलसी डाल लगाता,
करि आरती नित स्तुति गाता।
तेरह दिन देवन्ह जिमाता,
सन्त श्रद्धालु जोड़ी नाता॥

महोत्सव रथ खींच मनाता,
वासुदेव यदुनाथ की।
आरती कीजे जगन्नाथ की,
राघवानन्द रघुनाथ की॥

राम दरबार सिय राम विराजें,
लखन रिपुहन सुरक्षा साजे।
हनुमत भरत चरणन राजें,
सुग्रीव विभिषण सेवा लाजे॥

जल्ला महावीर मन्दिर गाजे-बाजे,
राम दरबार सीतानाथ की।
आरती कीजे जगन्नाथ की,
राघवानन्द रघुनाथ की॥

रखिह्वौं अपने शरणमह ताता,
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता।
श्रद्धा-भक्ति जो शरणन आता,
करें तिनके दुःख-दोष निपाता॥

घनश्याम दास हंस आरती गाता,
जय जय जय जानकीनाथ की।
आरती कीजे जगन्नाथ की,
राघवानन्द रघुनाथ की॥

***

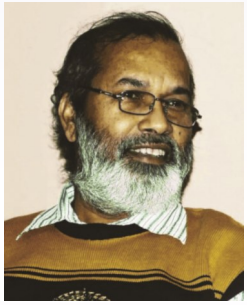

*वरिष्ठ पत्रकार,*
*पूर्व न्यूज़ एडिटर,*
*पी टी आई,*
*नई दिल्ली।*

**डा.कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव**

वृक्ष नहीं बोलते ।
क्यूँ नहीं बोलते ।
राज चुप रहने का,
क्यूँ नहीं खोलते ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

साथी के वियोग में ।
शायद वे शोक में ।
दो मिनट आँसू रोक के ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

पोषक वसुधैव कुटुम्बकम् के ।
मानव के अहम के ।
बलिदान दे चरम के ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

क्रूरता मानव का विकट ।
कटा जो साथी निकट ।
करते वे महाशोक प्रकट ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

उनकी किस्मत में बदा ।
साथी से विछोह सदा ।
रह मौन, झेलते विपदा ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

कटे साथी के वसन्त पर ।
अपने वंश के अंत पर ।
कटना जिन्हें निरंतर ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

मानव से कुछ ना मिला ।
खत्म करे जिनकी इहलीला ।
करते ना शिकवा गिला ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

हर मिनट एक मिनट का मौन ।
इंतजार! अब उन्हें काटेगा कौन ।
वजूद खत्म करेगा कौन ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

अकाल मरी डाली पर ।
सभ्यता की कुल्हाड़ी पर ।
इंतजार ! अपनी बारी पर ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

चुपचाप रोते डोलते ।
ना चुप्पी का राज खोलते ।
वृक्ष इसलिए न बोलते ।
वृक्ष इसलिए न बोलते ।

मौन कुछ नहीं बोलते?

***

**श्री गौरीशंकर वैश्य विनम्र**
117 आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ 226022

# भारत-दर्शन

धरती पर है स्वर्ग सरीखा,
आओ! करें हम भारत-दर्शन ।

न्यारी संस्कृति में हर प्राणी, बदल रहा है निज परिवेश
भिन्न - भिन्न लोगों से मिलकर, देखे नित नव भारत देश,
पावन तीर्थाटन के द्वारा, मिलता हमको नूतन ज्ञान
अनुपम जीवन दिखे निकट से, अच्छी हो जाती पहिचान
माता भूमि हमें दुलराती
करती सब पर स्नेह सुवर्षण।

चारों धामों की यात्रा कर लें , मिल जाएगा पुण्य अगाध
आध्यात्मिक मान्यताओं से, जीवन की गति रहे अबाध
व्यवधानों में जीत - मुक्ति से, कदम बढ़ें उन्नति की ओर
पग - पग पर कष्टों को सहकर, नापें हँसकर चारों छोर
संस्कृति के प्रति दृढ़निष्ठा से,
करें सहर्ष सुहृदय अर्पण।

देवी-देवों के जन्मस्थल, दिखेंगे लाकर शुचिता भाव
पूर्वजों की तपस्थली भी, मन पर डाले धवल प्रभाव
सांस्कृतिक मूल्यों पर बल दें, परंपराएँ छुएँ शिखर
मिल जाएगा लाभ अपरिमित, सोच अनूठा जाए निखर
आस्था अनुदिन जमे सुदृढ़तर,
बढ़े तीर्थ के प्रति आकर्षण।

दुर्गम यात्रा करने जाते, आस्थावान नहीं रुकते
ऊँचे-ऊँचे पर्वत चढ़कर, बाधा सम्मुख कब झुकते
यात्री गंदे करें न स्थल, समुचित रखें साफ-सफाई
भीड़भाड़ से बचना होगा, सतर्कता में भली - भलाई
कलुष - कुटिलता अवगुण छोड़ें
स्वच्छ रखें हम मन का दर्पण।
आओ! करें हम भारत-दर्शन ।

# रामचरितमानस की रामकथा

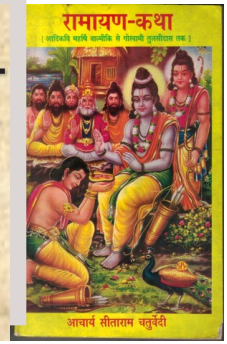


## आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

**यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।**

## बालकाण्ड

*[गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना अन्य सब रामायणों से भिन्न की है। उनका उद्देश्य रहा है कि पुराणों, रामायणों तथा अन्य सब स्रोतों से मनोरंजक अंश लेकर 'कथा-प्रबन्ध विचित्र बनाई' रामायण की रचना की जाय। राम-कथा का जो अंश उन्हें जहाँ प्रिय लगा वहाँ से उसे लाकर उन्होंने रामचरितमानस में ला ग्रथित किया है। मूल कथा वही है जो शिवजीने पार्वतीसे कही थी, गोस्वामीजीने केवल उसे भाषा - निबद्ध मात्र किया है—*

*रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमै सिवासन भाखा॥*
*भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥]*

श्रीरामचरितमानस के प्रारंभमें गुरुकी वन्दना और सत्संगतिकी महिसा बता चुकने पर अन्तमें कह दिया गया है—

**जड़-चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।**
**बन्दौं सबके पदकमल, सदा जोरि जुग पानि॥**

यह चरित महादेवजीने पहले पार्वतीको सुनाया, फिर कागभुशुण्डिको सुनाया। उनसे ही सुनकर याज्ञवल्क्यने भरद्वाजको सुनाया। अपने गुरुसे बार-बार सुनकर उस कथा-प्रबन्ध को विचित्र बनाकर वही कथा गोस्वामीजी ने कही है। यही चरित कागभुशुंडि ने गरुड को सुनाया था।

## भूमिका

एक बार त्रेतायुग में जब अगस्त्य से राम कथा सुनकर महादेवजी अपनी पत्नी सती के साथ लौटे जा रहे थे तभी राम दंडकवन में व्याकुल होकर सीता को खोजते फिर रहे थे। उन्हें देखकर शिवजी ने 'जय सच्चिदानन्द' कहकर जब प्रणाम किया तब सती चौंक उठीं। शिव ने उन्हें

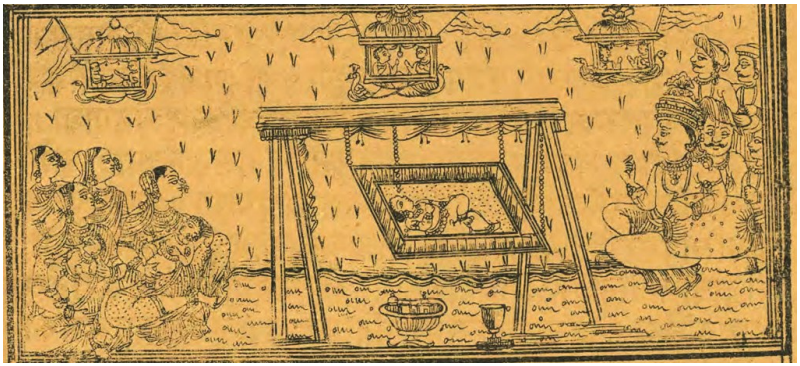

समझाया कि ये ही मेरे इष्टदेव हैं, तुम चाहो तो परीक्षा करके देख आओ। सती ज्यों ही सीता का रूप बनाकर राम के सामने पहुँचीं कि राम ताड़ गए और उन्होंने प्रणाम करके पूछ ही तो लिया कि शिवजी कहाँ रह गए : अब तो सती पानी-पानी होकर उलटे पाँवों लौट आईं। शिवजी ने सब समझकर निश्चय कर लिया कि अब सती से संबन्ध तोड़ना ही पड़ जायगा।

इसी बीच शिव के बहुत रोकने पर भी सती अपने पिता दक्ष के यज्ञ में चली गईं। वहाँ शिवजी का भाग न देखकर उन्होंने योगाग्नि से शरीर छोड़ दिया। वे ही फिर हिमालय के यहाँ पार्वती रूप में उत्पन्न हुईं और उन्होंने कठोर तप करके शिव को पति रूप में पा लिया। उन्होंने शिव से रामचरित के विषय में जो प्रश्न किए, उन्हीं का उत्तर यह रामचरितमानस है।

*[गोस्वामीजीने रामचरितमानस में पार्वतीजी के सब प्रश्नों का उत्तर तो दिलवा दिया किन्तु न तो राजसिंहासन पर बैठने पर उनकी लीलाओं का वर्णन कराया न उनके परम धाम लौटने का।]*

## राम-जन्म के कारण

विष्णु के द्वारपाल सगे भाई जय और विजय को ब्राह्मण के शाप से तीन बार राक्षस-देह धारण करना पड़ा। एक बार वे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए जिन्हें भगवान् ने नृसिंह और वराह अवतार लेकर मारा। दूसरी बार वे रावण और कुंभकर्ण हुए जिन्हें उन्होंने राम का अवतार लेकर मारा। एक कल्प में जलन्धर दैत्य की पत्नी वृन्दा के शाप से भी विष्णु को अवतार धारण करना पड़ा था। यह जलन्धर ही रावण हुआ था। कश्यप ओर अदिति ही दशरथ और कौशल्या हुए।

नारद को शाप मिला हुआ था कि ढाई घड़ी से अधिक कहीं जमकर नहीं बैठ सकते। एक बार हिमालय में उन्होंने ऐसी लम्बी समाधि जमा लगाई कि कामदेव भी उनसे हार मान गया। इसपर उन्हें ऐसा अभिमान हुआ कि विष्णु ने उनका अभिमान दूर करने के लिये उनके मार्ग में शीलनिधि राजा की कन्या विश्वमोहिनी का स्वयंवर रच खड़ा किया। जब नारद ने उसके हाथ में देखा कि इसका पति तो तीनों लोकों का स्वामी होगा तब वे भगवान् से उनका हरि-रूप माँगकर स्वयंवर में जा पहुँचे। वहाँ उनका हरि (वानर) रूप देखकर कन्याने तत्काल मँह फेर लिया और उसी समय वहाँ आए हुए विष्णु के गले में जयमाला उठा डाली। अब तो नारद बौखला उठे। वहीं शिवजी के दो गणों ने नारद को अपना मुँह देखने को कहा तो अपना वानर-जैसा मुँह देखकर उन्होंने झल्लाकर शाप दे दिया कि जाओ, तुम दोनों राक्षस हो जाओ। वे ही रावण कुंभकर्ण हो गए।

*[यह कथा आनन्दरामायण, सोहाई रामायण, चान्द्र रामायण और रामायण-चम्पू से ली गई है।]*

जब नारद झल्लाते हुए डग बढ़ाए चले जा रहे थे तभी लक्ष्मी और विश्वमोहिनी के साथ विष्णु को आते देखकर वे उनपर बरस पड़े कि जिस मानव-शरीर से आपने मुझे धोखा दिया है वही शरीर आप भी धारण कीजिएगा और जैसा मेरा मुँह आपने बनाया

**"ब्रह्मा के कहने से देवता लोग वानर होकर पृथ्वी पर आ पहुँचे।**

**जब अयोध्या के राजा दशरथ के कोई पुत्र नहीं हुआ तब उन्होंने ऋष्यशृङ्ग से पुत्रेष्टि यज्ञ बुला करवाया जिसमें अग्नि ने दशरथ को जो चरु (उबला हुआ चावल) दिया उसका आधा भाग दशरथ ने कौशल्या को, शेष आधे के दो भागों में से एक भाग कैकेयी को दे दिया और शेष चौथाई भाग के दो भाग करके कौशल्या और कैकेयी के हाथोंसे सुमित्रा को दिलवा दिया।"**

वैसे मुँहवाले ही आपकी सहायता भी करेंगे!

स्वायंभुव मनुने भी तप करके यही वर माँगा था कि आपके जैसा ही मेरा पुत्र हो। उसी के कारण भगवान् ने दशरथ के यहाँ जन्म लिया।

## रावण-कुम्भकर्ण-विभीषण

केकय देश के राजा प्रतापभानु एक बार सूअर के पीछे घोड़ा डालकर दूर निकल गए और शत्रु कपटी मुनि के यहाँ जा पहुँचे। उसने उनसे कहा कि ब्राह्मण कुल को प्रसन्न किए रक्खो तो तुम्हारा कल्याण होगा। राजा ने लौटकर ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे दिया। उस कपटी मुनि के मित्र कालकेतु ने रसोइया बनकर ब्राह्मणों के आगे मनुष्य का मांस ला परोसा। इसपर ब्राह्मणों ने उसे शाप दे दिया कि एक वर्ष में तुम्हारा नाश हो जायगा और तुम परिवार सहित राक्षस हो जाओगे। प्रतापभानु तो रावण हुआ, उसका भाई अरिमर्दन ही कुम्भकर्ण हुआ और उनका मन्त्री विभीषण हुआ।

*[यह कथा गोस्वामीजी ने मंजुल-रामायण और अगस्त्य-रामायण से ली है।]*

रावण ने तप करके ब्रह्मा से वर पा लिया कि वानर और मनुष्य को छोड़कर मैं किसी से भी न मारा जा सकूँ। कुम्भकर्ण ने छह महीने तक सोते रहने का और विभीषण ने भगवान् की भक्ति का वर प्राप्त कर लिया। मय की पुत्री मन्दोदरी से रावण का, बलि की दौहित्री वृत्रज्वाला से कुंभकर्ण का और शैलूष गन्धर्व की पुत्री सरमा से विभीषण का विवाह हो गया। रावण ने कुबेर को लंका से निकालकर वहाँ अपनी राजधानी जा बनाई और कुबेर का पुष्पक विमान भी छीन हथियाया।

## राम का अवतार

जब पृथ्वी ने ब्रह्मा के साथ विष्णु के पास जाकर रावण के अत्याचार की बात कही तो उन्होंने आश्वासन दिया कि कश्यप और अदिति को दिए हुए वरदान के अनुसार मैं अंशों सहित दशरथ और कौशल्या के यहाँ जन्म लूँगा।

*[पहले मनु-शतरूपा को दिए हुए वरदान से रामजन्म की बात कही गई है, यहाँ कश्यप-अदिति को दिए हुए वर के कारण।]*

ब्रह्मा के कहने से देवता लोग वानर होकर पृथ्वी पर आ पहुँचे।

जब अयोध्या के राजा दशरथ के कोई पुत्र नहीं हुआ तब उन्होंने ऋष्यशृङ्ग से पुत्रेष्टि यज्ञ बुला करवाया जिसमें अग्नि ने दशरथ को जो चरु (उबला हुआ चावल) दिया उसका आधा भाग दशरथ ने कौशल्या को, शेष आधे के दो भागों में से एक भाग कैकेयी को दे दिया और शेष चौथाई भाग के दो भाग करके कौशल्या और कैकेयी के हाथोंसे सुमित्रा को दिलवा दिया।

*[यह वितरण विभिन्न रामायणों में विभिन्न प्रकारसे मिलता है।]*

इसके प्रभाव से कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए। वशिष्ठ ने उनके सब संस्कार करके उन्हें सारी विद्याएँ पढ़ा

डालीं।

## विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण

एक दिन विश्वामित्र मुनि अयोध्या आए और अपने यज्ञ की रक्षाक लिये राम-लक्ष्मण को दशरथ से माँग ले गए। मार्ग में उन्हें ताड़का राक्षसी उनकी ओर झपटी आती दिखाई दे गई। विश्वामित्र के कहने से राम ने उसे एक ही बाण से ढेर कर डाला। यज्ञ के समय विघ्न करनेवाले मारीच को तो उन्होंने एक बाण मारकर समुद्र-तटपर उड़ा फेंका और सुबाहु तथा उसके साथी राक्षसों को वहीं बातकी बात में धरती चटा दी। विश्वामित्र ने राम को बला और अतिबला विद्याएँ सिखा बताईं जिनसे न भूख लगे, न प्यास लगे, न कभी थकावट हो।

वहाँ से विश्वामित्र उन्हें मिथिलापुरी लिवाते ले गए। मार्ग में उन्होंने राम से कहकर शिला बनी पड़ी हुई अहल्या का उद्धार करा दिया और गंगा पार करके वे मिथिलापुरी पहुँच गए। वहाँ जनक उनकी अगवानी करके उन्हें नगर में लिवाते ले गए जहाँ उन्होंने जनकको राम-लक्ष्मण का पूरा परिचय दे दिया।

इसी बीच विश्वामित्र के सन्ध्या-वन्दनके लिये पुष्प लाने जब राम-लक्ष्मण जनक की वाटिका में पहुंचे तभी उधरसे गिरिजाके पूजन के लिये सीता भी वहीं आ पहुँची। राम ने सीता को और सीता ने राम को देख लिया और राम का सीता के प्रति और सीता का राम के प्रति अनुराग आ जगा। गिरिजा ने सीता को आशीर्वाद दे दिया कि तुम्हें इच्छित पति अवश्य मिल जायँगे।

*[यह कथा प्रसन्नराघव से ली गई है।]*

धनुर्यज्ञके मंडप में यह घोषणा कर दी गई कि जो वीर शंकर के धनुष् को तोड़ देगा (झुकाकर डोरी चढ़ा देगा) उसीसे जानकी का विवाह होगा। जब कोई राजा उसे सरका-तक न सका तब बहुत निराश होकर जनक बोल उठे— "वीर-विहीन मही मैं जानी।"

इसपर लक्ष्मण तो बहुत बिगड़ खड़े हुए, किन्तु रामने उन्हें शान्त कर बैठाया। तभी विश्वामित्र के कहनेसे रामने जाकर वह धनुष धीरे से उठा लिया। उन्होंने ज्यों ही उसपर चिल्ला चढ़ाकर उसे कान तक खींचा कि वह कड़कड़ाकर बीच से दो टूक हो गिरा। सीता ने आकर उनके गले में जयमाला उठा पहनाई।

इतने में वहाँ परशुराम आ पहुँचे। आते ही उन्होंने जनकको डपटा कि यह धनुष किसने तोड़ फेंका है? इसपर राम ने विनय के साथ स्वीकार किया कि यह मैंने ही तोड़ा है। लक्ष्मण ने परशुराम से बहुत मुँहामुँही और छेड़छाड़ की, परशुराम बहुत बमके, बहुत लाल-पीले हुए, पर रामने उन्हें शान्त कर दिया और वे अपना धनुष देकर रामकी स्तुति करके चलते बने।

*[राम और विश्वामित्र की उपस्थिति में लक्ष्मण का परशुराम की हँसी उड़ाना और उनसे छेड़छाड़ करना अनुचित और अमर्यादित है और यह प्रसंग किसी अन्य रामायण में है भी नहीं किन्तु गोस्वामीजीने मनोरंजकता के कारण प्रसन्नराघवसे यह प्रसंग यहाँ ला जोड़ा है।]*

परशुराम का जाना था कि सब प्रसन्न हो उठे। अयोध्या से दशरथ भी भेज बुलवा लिए गए। (सीरध्वज) जनक की पुत्री सीता से राम का, उनकी दूसरी पुत्री उर्मिला से लक्ष्मण का, जनक के भाई कुशध्वज की एक पुत्री माण्डवी से भरत का और दूसरी पुत्री श्रुतकीर्त्ति से शत्रुघ्न का विवाह हो गया। दशरथ सबको लिए दिए अयोध्या लौट आए।

**॥बालकाण्ड पूर्ण॥**

***

19वीं शती में जब स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा था तब हिन्दी भाषा के माध्यम से अनेक रोचक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें कहानियों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण बातें बतलायी गयी। ऐसे ग्रन्थों में से एक 'रीतिरत्नाकर' का प्रकाशन 1872ई. में हुआ। उपन्यास की शैली में लिखी इस पुस्तक के रचयिता रामप्रसाद तिवारी हैं।

इस पुस्तक में एक प्रसंग आया है कि किसी अंगरेज अधिकारी की पत्नी अपने बंगला पर आसपास की पढ़ी लिखी स्त्रियों को बुलाकर उनसे बातचीत कर अपना मन बहला रही है। साथ ही भारतीय संस्कृति के विषय में उनसे जानकारी ले रही है। इसी वार्ता मंडली में वर्ष भर के त्योंहारों का प्रसंग आता है। पण्डित शुक्लाजी की पत्नी शुक्लानीजी व्रतों और त्योहरों का परिचय देने के लिए अपनी दो चेलिन रंगीला और छबीला को आदेश देतीं हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह ग्रन्थ अवध प्रान्त के सांस्कृतिक परिवेश में लिखा गया है। इसमें अनेक जगहों पर बंगाल प्रेसिडेंसी को अलग माना गया है।

सन् 1872 ई. के प्रकाशित इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा में बहुत अन्तर तो नहीं है किन्तु विराम, अल्प विराम आदि चिह्नों का प्रयोग नहीं हुआ है जिसके कारण अनेक स्थलों पर आधुनिक हिन्दी के पाठकों को पढ़ने में असुविधा होगी। इसलिए यहाँ भाषा एवं वर्तनी को हू-ब-हू रखते हुए विराम-चिह्नों का प्रयोग कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ स्थलों पर अनुच्छेद परिवर्तन भी किए गये हैं। जिन शोधार्थियों को भाषा-शैली पर विमर्श करना हो, उन्हें मूल प्रकाशित पुस्तक देखना चाहिए, जो Rītiratnākara के नाम से ऑनलाइन उपलब्ध है।

अवध क्षेत्र में

# 19वीं शती की विवाह-विधि

## जयंती का विवाह

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि 19वीं शती में विवाह होने के दिन किस प्रकार बारात आने की धूम होती थी। पिछले अंक में कन्यादान से पैर-पुजाई तक की विधि दी गयी थी। इस अंक में दूल्हे के साथ प्रश्नोत्तरी, खिचड़ी खाना तथा बारात जीमने की कहानी पढ़ें। सर्वत्र लोकाचार में सादगी की प्रधानता है।

### गीत

**कन्या बच्चन**

**हटि अहि सेंदूरा महंग भा है बाबा**
**चुंदरी भई अनमोल॥**
**यही सेंदूरवा के कारण बाबा**
**छोड़ेउं मैं देशवा तुम्हार॥**
**छोड़ेउं मैं आटन छोड़ेउं मैं पाटन**
**छोड़ेउं मैं माया का कोर॥**
**छोड़ेउं मैं भैय्या के लाख दुहाइ**
**भौजी के राम रसोई॥**

**माता बचन**

माता कहें बेटी नित उठि आयहु
बाबा कहें छठ मास॥

भैया कहें बहनी काज प्रयोजन
भौजी कहें कस बात॥

**कन्या बचन**

**बाबा जो दोन्ह्यों है नौ मन सोनवा**
**माया लहरि पटोर॥**
**भैय्या जो दीन्ह्यो हांसिल घोड़वा**
**भौजी मांग सेंदूर॥**
**नौ मन सोनवा मैं नव दिन खाबै**
**फट जाई लहर पटोर॥**
**भैय्या कर घोड़वा मैं नगर खुदवबै**
**रहिजे हैं मांग सेंदूर॥**

इसके पीछे सेंदूर **बहन्नी की रीत** आई तो जयंती की बुआ कृष्णा बीबी ओढ़ना पहिन घूंघट काढ़ के गईं। जो कन्या के माथे में सेंदूर रहा, उसको बटोर अपने हाथ से अच्छे प्रकार सेंदूर पहिना और 2) अपना नेग पाया।

फिर पूर्णाहुति और अभिषेक हुआ ब्राह्मणों को भूयसी दक्षिणा बांटी गई और दोनों ओर के नाई आदि को न्योछावरि मिली। फिर दूलह-दुलहिन को नाइन में कोबहर में ले गई और दूलह-दुलहिन को लपकौरि खिलाया अर्थात् दही और शक्कर दुलह के हाथ से दुलहिन के मुँह में और दुलहिन के हाथ से दूलह के मुंह में छुआ दिया। इसीको **लिटौर गुड़** का खिलाना कहते हैं।

जिस समय दूलह के मुख में शक्कर दही लगाया गया इसके पीछे कृष्णा बीबी ने जूते को लाल कपड़े में लपेट के दूलह के आगे रख दिया और कहा कि 'हे श्रीमंत! इनके दंडवत प्रणाम करो।'

तब दूलह ने कहा कि 'यह कौन वस्तु है, जिसके हम दंडवत प्रणाम करें?'

रुक्मिन बोलीं कि 'यह तुम्हारे कुलदेवता हैं।'

तब श्रीमंत ने कहा कि 'हमारे कुलदेवता हमारे घर रहते हैं, यहाँ क्यों आने लगे।'

तब राधा ने कहा कि 'यह तुम्हारे इष्ट देवता हैं।'

यह बात सुनकर बर बहुत रिसा उठा और बोला कि 'बस चुप रहो, ऐसी बात फिर कहोगी तो बिगड़ जायगी तुम सब क्या जानो हमारा इष्ट देवता साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं जो सबका प्रभु और पालक हैं। उसके सिवाय किसी विनश्यमान वस्तु को हम इष्ट-देवता नहीं समझते।'

यह बात सुन सब स्त्रियाँ चकित हो गईं। नेता ने कहा कि अभी तो बेटा दुधमुँहे बालक हो और बात बूढ़ों की ऐसी कहते हो?

यह बात सुन दूलह ने यह श्लोक पढ़ा—

श्लोक

**बालो यद्यप्यहं बाले न मे बाला सरस्वती।**
**विद्या गुरु प्रसादेन क्षमो बक्तुं जगद्विधिम्॥**

अर्थात् हे बाले मैं यद्यपि लड़का हूँ, परंतु मेरी सरस्वती अज्ञान बालक नहीं है। अपने गुरु और विद्या के प्रसाद से जगत् का विधान कह सकता हूँ।

यह बात सुन शुक्लानीजी बहुत प्रसन्न हुई उन्होंने श्रीमंत का माँथा चूम के उसे अपने हृदय से लगा लिया और कहा कि 'धन्य धन्य बेटा, धन्य, तुमने ठीक कहा। तुमको परमेश्वर चिरंजीव रक्खे।' फिर सोने की सलाई देकर दूलह से बाती मिलवाई।

जब सब कोहबर की रीति भाँति हो चुकी और दूलह चलने लगा तो छोकरियों ने दूलह के मुँह में दही और जो उसके साथ नाई था उसके गाल में काजल सेंदूर लगा दिया फिर दूलह जनवासे को गया। घर में खिचड़ी की तैय्यारी होने लगीं।

जब खिचड़ी खाने के लिये बुलाया गया तो बड़ी धूम-धाम से बाजा बाजता हुआ दूलह की सवारी आई। जितने छोटे-छोटे लड़के थे और नाई, बारी, पालकी के कहार सब दूलह के साथ खिचड़ी खाने को उठे। एक मुहर और एक कामदार टोपी खिचड़ी खाने के समय

दूलह को दी।

जब दूलह खिचड़ी खा चुका तो आँगन में चारपाई बिछाई गई। उसपर गलीचा दसा के दूलह को बैठाया। सब टोले-महल्ले की स्त्रियाँ दूलह देखने के लिये इकट्ठी हुईं। सब स्त्रियों ने एक-एक रुपया रखके थैलियाँ भेट की भांति दूलह को दीं। सब मिलाके इकतीस थैली मिली और दूलह के साथ जिनका जैसा पद रहा उन्होंने हँसी-टट्ठे की बातें कीं।

जब सूर्य अस्त होने लगा तो दूलह जनवासे गया फिर बरातियों को जीमने के लिये उठाया उसी साथ भतखई के नेग में समधी को सब मिला के चालीस-पचास रुपये मिले। तीसरे दिन बरात बिदा होने के समय एक थाली में पीला अक्षत और हलदी दूब 1) और हंडा आदि बर्तन जनवासे में समधी के पास भेज दिये गये और बर पर्छन करने को आया।

पंडित ने दूलह-दुलहिन की गांठ जोर के गौर-गणेश की पूजा कराई और कन्या का हाथ नीचे करके वर के हाथ में खिचड़ी भराई। तीन अंजुली देवतों के नाम रख दी और एक-एक अंजुली परजाओं को और जो वहाँ पर दो चार ब्राह्मण थे, उनको तीन-तीन अंजुली दिलाई। फिर आरती हुई और मथानी लोटा भर पानी लेकर मैंने पर्छन किया।

जब मैं चलने लगी तो श्रीमंत ने मेरा आंचर घर लिया जब 5) आंचर धराई का नेग पाया तो आंचर छोड़ा। इसके उपरांत समधी मांड़ो हिलाने को आया। दो मनुष्य एक चादर तानके खड़े हो गये और सब बराती मांड़ो झकझोर कोरके हिलाने लगे और यह कहते थे कि 'बरसो समधी बरसो।'

फिर उस चादर में हमारी ओर से दस रुपये छोड़े गये। तब समधी ने हमारे पास दस रुपये मिलना के लिये भेजे हमने 5) अपने पास से मिलाके उनको दसों रुपये फेर दिये फिर समधी-समधी का मिलना होकर जितने भाई बंधु बरात में रहे सबको यथोचित मिलना दिया। किसी को केवल रुपया, किसी को थान और रुपया दोनों मिला।

वह फागुन का महीना था। बरातियों ने अबीर घोलके क्या स्त्री क्या पुरुष सब छोटे बड़े के ऊपर रंग छोड़ा और आनंद के साथ गाते बजाते बिदा हुए जब आँगन से बाहर को निकलने लगे तो बरातियों ने आशीर्वाद की भाँति यह फाग की गीत गाई—

**फाग**

**सदा अनंद रहे यह द्वारे मोहन खेलें होरी हो॥**

जब बरात द्वारे से बिदा हो गई तो दोनों ओर के प्रजा-पौन को जोड़ा आदि दिया गया और हमारे समधी ने हमारे पुरोहित को पचास-साठ रुपया पचोत्तरा दिया और दोसाला थान गहना तो दोनों पुरोहितों को मिला उसकी कुछ गिनती नहीं जितना ही वहां से हमारे लोगों को मिला उतना ही हमको वहाँ वालों को देना पड़ा और जितने बरात में मुड़ के और बहँगीवाले कहार थे उन सब को हमारी ओर से यथा चित बिदाई दी गई॥

ब्याह के दूसरे तीसरे दिन सब महमान बिदा हुए और चौथी छोड़ाई गई पांचवें दिन भोजवट का मुहूर्त बना उस दिन देवताओं और कोहबर की पूजा करके सब भाई-बंधु और प्रजा-पौन को खिलाया पिलाया॥

यह बात सुन मुन्नी बोली कि 'मैना बहिन! तुमने तो जो जो काम किया से सब अच्छा किया। हम पहिले ही से सुन चुकी हैं। जो लोग तुम्हारे यहाँ नेवते गये रहे वह सब तुम्हारा बखान करते थे और जिन दिनों तुम्हारे यहाँ जयंती का विवाह था। उसी लगन में यहाँ ललिता की लड़की का ब्याह हुआ पर क्या कहूँ उनसे कुछ बात व्यवहार न बन पड़ा जैसा उनका बड़ा नाम रहा, पचास रुपये महीने के नौकर हैं, सैकड़ा रुपया ऊपर से मिलता है और बड़े हुब से लड़की का व्याह किया, पर थोड़ी-सी लालच करके ऐसा बिगाड़ा कि देश देश में नमधरी

हुई। तीन दिन बरात टिकी रही, किसी को मूठी भर चबेना तक न मिला और खाने-पीने की कौन कहे। बिचारे बराती भूखों के मारे मरे घोड़े और बैलों को घास दाना तक नहीं पहुँचा। दूलह के बाप ने अपने पास से सबको पैसे बाँटे तो लोगों को दाना मिला। इसी कारण समधी जीमने को नहीं उठता रहा सो बड़ी कठिनाई से मनाये चुनाये बरात जीमने को उठी तो रसोई में रोटी कम हो गई। सीधा पानी सब कुछ रहा, पर दोनों परानी का जीव कृपण ठहरा, तो कैसे पार लगे। नाम तभी होता है जब काम-काज में मनुष्य जी खोलके खर्च को नहीं डरता। सो जब रोटी कम हो गई तो सब परोसनेवाले पुरुष भी जल्दी-जल्दी रोटी पकाने लगे। जो स्त्रियाँ गाती-बजाती रहीं वह सब पुरुषों की घबराहट देख कर हँसने लगीं और जितने बरातवाले रहे सो सब परदे की ओट से देखते थे कि कोई पुरुष तो मोटी-मोटी रोटी बना रहा है और कोई भात कोई दाल। सो इतने पर भी जितनी स्त्री लोग थीं, सब भूखी रह गईं। तब सब कोई कहने लगे कि तुमसे कुछ न बन पड़ा। ऐसी जून पर नौधरी हुई। तब ललिता बोलीं कि मैं क्या करूँ? करने धरनेवालों बिना यह दशा हुई, जो हमारे घर में कोई करनेवाला होता तो काहे को नौधरी होती फिर बड़ी कठिनाई से बढ़हार के दिन लोगों को भोजन पहुंचा और देने लेने में भी ऐसी कृपिनाई की जिसका कुछ ठिकाना नहीं उनकी यह दशा देख सब लोग अचरज करते और कहते थे कि ऐसा धन सम्पत्ति किस काम आवेगा काम काज के दिन जिसकी प्रतिष्ठा भंग हो जाती है फिर वह चाहे लखपती हो परंतु फिर उसका कुछ प्रमाण लोगों में नहीं रह जाता से प्रकार वा उद्यम ब्यौपार करके मनुष्य कौड़ी-कौड़ी बटोरता है और काम -काज के दिन हजारों खर्च कर डालता है॥

***

## सर्पों की देवी मनसा का वृक्ष : स्नुही

पूर्वोत्तर भारत के क्षेत्रों में नागपंचमी तथा मौना पंचमी के दिन सर्पों की देवी मनसा की पूजा होती है। श्रावण मास के कृत्य के सम्बन्ध में शब्दकल्पद्रुम में कहा गया है- अथ श्रावणकृत्यम् । तत्र देवीपुराणम् । "सुप्ते जनार्द्दने कृष्णे पञ्चम्यां भवनाङ्गने । पूजयेन्मनसा देवीं स्नुहीविटप-संस्थिताम्॥" स्नुही सिजवृक्षः ।

इस प्रकार, यह सिज, पसीज, मैनसिज का वृक्ष भी सनातन धर्म में पूजित है। प्राचीन काल में घरों को दीमक से बचाने के लिए इसे आलय में लगाया जाता था।

# पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम- **अनमोल अमृत वचन**, संकलनकर्ता- डा. बृजेन्द्र नारायण माथुर, प्राप्तिस्थान- ज्ञान चन्द गर्ग, 99 प्रीत नगर, अम्बाला शहर, 134003 (हरियाणा) सम्पर्क : 0171-2552761. मूल्य : निशुल्क वितरणार्थ। पृष्ठ संख्या : 212. Hard Bound.

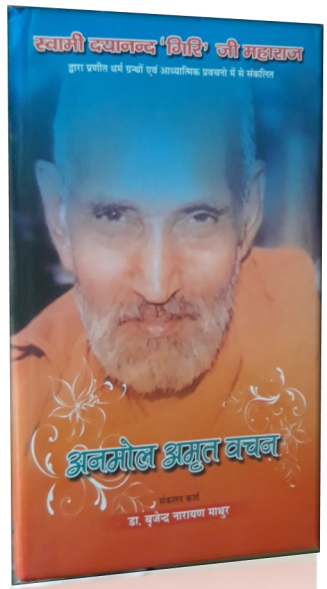


मानव जीवन क्षणभंगुर है, किन्तु यदि वह व्यक्ति अपने परिवेश के साथ तालमेल बैठाकर अपने अंतर्मन के शत्रुओं को साधना के बल पर दूर भगाकर कर्तव्य करते हुए जीता है तो जीवन सुखद बन जाता है। हमारे चारों ओर जो जैविक तथा अजैविक वातावरण है, उसके साथ सहजीवन मानव को सुखमय बना देता है। यही श्रेष्ठ साधना है।

इस ग्रन्थ में भारतीय परम्परा की दार्शनिक गुत्थियों से बिल्कुल अलग सरल एवं सुबोध हिन्दी भाषा में इस साधना के मार्गों एवं तथ्यों का संकलन इस सम्पूर्ण पुस्तक में है। हरियाणा के अम्बाला शहर के निवासी सन्त स्वामी दयानन्द गिरि (1919ई.-2004ई.) ऐसे सन्त थे, जिन्होंने भारतीय परम्परा की साधना प्रक्रिया से स्थावर-जंगमात्मक जगत् के सन्तुलन से मानव-जीवन को सुखमय बनाने का रहस्य जान चुके थे। सम्पादक महोदय ने उन्हीं के वचनों का सुगम संकलन किया है ताकि आम पाठक, जिन्हें साधना तथा दर्शन की थोड़ी-सी भी जानकारी नहीं है, वे भी इन वचनों से लाभान्वित हो सकें। इस प्रकार, सनातन परम्परा के आलोक में जीवन-दर्शन से सम्बद्ध यह पुस्तक पठनीय है।

इस पुस्तक को कुल दस अध्यायों में बाँटा गया है। इन अध्यायों के आरम्भ में सूत्र रूप में अध्याय में वर्णित महत्त्वपूर्ण तथ्य सूचीबद्ध कर दी गयी है। जैसे खण्ड 6 के आरम्भ में सांसारिक बन्धनों से मुक्ति हेतु 10 उपायों के नाम अंग्रेजी अनुवाद के साथ कह दिये गये हैं- मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, क्षमा, शील, दान, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा। इन विषयों पर इस खण्ड में विस्तार से वर्णन आया है।

स्वामी दयानन्द गिरि के उपदेशों से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों की शृंखला में यह भी एक है। इसके अतिरिक्त (1) आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह भाग 1, (2) आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह भाग-2, (3)आध्यात्मिक जीवन पद्यावली भाग 1 (4) आध्यात्मिक जीवन पद्यावली भाग 2, (5) कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद विवरण, (6) स्वामी दयानन्द गिरिजी महाराज का जीवन चरित, (7) ओ3म् व सोहम् की व्याख्या पुस्तकें इस शृंखला के अन्य प्रकाशन हैं। इन प्रकाशनों के अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध हैं।

स्वामीजी के शिष्यों के द्वारा उनके प्रवचनों तथा अन्य उपलब्ध लिखित कृतियों को प्रकाशित कर वितरित करने का कार्य किया जा रहा है। ऊपर दिये गये सम्पर्क सूत्र पर सम्पर्क करने पर पुस्तकें निःशुल्क भेज दी जाती हैं।

***

महावीर मन्दिर समाचार

# मन्दिर समाचार

(अप्रैल, 2023ई.)

## जानकी नवमी पर महावीर मन्दिर में अष्टयाम का आयोजन, दि. 29 अप्रैल, 2023ई.

रामायण में करुणानिधान भगवान राम की अतिशय प्रिय जनकसुता माता जानकी जी ने महावीर हनुमान जी को अपना पुत्र माना था तथा उन्हें देवता के रूप में पूजित होने का वरदान दिया था। माता और पुत्र का वह संबंध एक बार फिर जीवंत हो उठा जब हनुमानजी के विशेष दिन शनिवार को पटना के महावीर मन्दिर में जानकी नवमी का आयोजन किया गया। माता जानकी के प्राकट्य दिवस वैशाख शुक्ल नवमी यानी जानकी नवमी को महावीर मन्दिर में पूरे विधि-विधान से पूजा-अर्चना की गयी। इस अवसर पर अष्टयाम संकीर्तन का आयोजन भी हुआ। महावीर मन्दिर के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित राम-जानकी की प्रतिमा के समक्ष सुबह कलश रखकर पूजा-अर्चना शुरू हुई। महावीर मन्दिर के प्रधान पुरोहित पंडित जटेश झा ने वैदिक मंत्रोच्चार के साथ पूजा संपन्न करायी। पूजन के बाद उसी स्थान पर चौबीस घंटे तक चलने वाले अष्टयाम संकीर्तन का आयोजन किया गया। स्थानीय कीर्तन मंडली ने रामचरितमानस के बालकांड की चौपाई का कीर्तन गायन शुरू किया तो महावीर मन्दिर परिसर भक्ति-रस में सराबोर हो गया। जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥ ताके जुग पद कमल मनावउं। जासु कृपा निरमल मति पावउं॥ इस चौपाई के सस्वर कीर्तन-जप में महावीर मन्दिर में आनेवाले भक्त भी अपना स्वर देते रहे। 11 सदस्यीय कीर्तन मंडली के कलाकारों में विपिन ठाकुर, देवेन्द्र निराला, योगेन्द्र व्यास, सुनील उपाध्याय, निरंजन दास, गोपाल शर्मा, नन्दन तिवारी, इन्द्रमोहन झा, पिन्टू कुमार आदि शामिल रहे। महावीर मन्दिर में जानकी नवमी के अवसर पर प्रत्येक वर्ष अष्टयाम संकीर्तन का आयोजन किया जाता है। इस बार शनिवार और जानकी नवमी के सुखद संयोग के कारण महावीर मन्दिर में भक्तों की संख्या अधिक थी। पूरे भक्तिभाव से महावीर मन्दिर में जानकी नवमी का आयोजन किया गया। पिछले वर्ष भी मंगलवार और जानकी नवमी का संयोग होने के कारण महावीर मन्दिर में भक्तों की भारी भीड़ उमड़ी थी।

# व्रत-पर्व

## ज्येष्ठ, 2079-2080 वि. सं. (6 मई-4जून, 2023ई.)

**पं. मुक्ति कुमार झा**
ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

**1. गणेश चतुर्थी, ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थी, आखुरथ चतुर्थी, 9 मई, 2023ई. मंगलवार**

**2. अपरा एकादशी व्रत, ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी, 15 मई, 2023ई. सोमवार (सबके लिए)**

**3. वटसावित्री, ज्येष्ठ अमावस्या, 19 मई, 2023ई. शुक्रवार**

ज्येष्ठ अमावस्या। महिलाएँ आजीवन सधवा रहे के लिए तथा पति की आयुवृद्धि के लिए यह व्रत करतीं हैं। सावित्री सत्यवान की कथा इसके साथ जुड़ी हुई है। यह मध्याह्नव्यापिनी पर्व है अर्थात् जिस दिन दोपहर में अमावस्या तिथि होती है उसी दिन यह व्रत होगा, अतः इसे चतुर्दशीविद्धा कहा गया है। इसमें दोपहर में किसी बड़गद के वृक्ष के नीचे गौरी की पूजा कर लाल रंग के धागे से पेड़ के चारों और लपेटने का विधान है। मौसम में प्राप्त होने वाला फल भोग लगाया जाता है तथा पंखा डुलाया जाता है। पूजा के बाद महिलाएँ बरगद का पत्ता अपने जूडा में लगाती हैं। इस पूजा के बाद महिलाएँ पारण कर लेतीं हैं। विवाह के प्रथम वर्ष यह पर्व विशेष धूमधाम से मनाया जाता है।

**4. रम्भा तृतीया, ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया, पंचाग्नि-व्रत, 22 मई, 2023ई., सोमवार**

पार्वती ने भगवान् शिव को पति के रूप में पाने के लिए चारों और अग्नि जलाकर तथा पाँचवीं अग्नि के रूप में सूर्य को निहारती हुई ग्रीष्मकाल की घोर तपस्या की थी। इसी उपलक्ष्य में यह व्रत किया जाता है।

**5. गङ्गा दशहरा, ज्येष्ठ शुक्ल दशमी, 30 मई, 2023ई., मंगलवार**

स्वर्ग से गंगा के अवतरण के उपलक्ष्य में गंगादशहरा का व्रत किया जाता है। इस दिन गंगा में स्नान करने से दस प्रकार के पापों का शमन होता है। एक अन्य उल्लेख के अनुसार इस दिन गंगा का अवतरण दस योग में हुआ था। ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, दशमी तिथि, मंगलवार या बुधवार, हस्त नक्षत्र, व्यतीपात योग, गर करण, आनन्द योग, कन्या राशि में चन्द्रमा एवं वृष राशि में सूर्य— ये दश योग कहे गये हैं। इनमें से योगों की संख्या जिस वर्ष जितनी अधिक होगी, दशहरा का व्रत उतना प्रशस्त माना जायेगा। यदि ज्येष्ठ में मलमास भी हो, फिर भी मलमास में ही दशहरा होती है। निर्णय-सिन्धु में कमलाकर ने इसे दस दिनों तक चलनेवाला पर्व बतलाया है। उनके अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा से गंगा के तट पर गंगा स्तोत्र का वृद्धि पाठ प्रतिपदा के दिन एक बार, द्वितीया के दिन दो बार इत्यादि के क्रम से करना चाहिए। इसप्रकार दशमी के दिन दश बार स्तोत्र का पाठ, षोडशोपचार पूजन आदि करना चाहिए। चावल के पीठा से बने जलीय जीवों का समर्पण भी करना चाहिए। स्तोत्र एवं पाठ की विधि धर्म-सिन्धु में उद्धृत किया गया है।

**6. कबीर जयन्ती, ज्येष्ठ पूर्णिमा, 4 जून, 2023ई., रविवार**

ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के शिष्य सन्त कबीर की जयन्ती मनायी जाता है। इस वर्ष परम्परा के अनुसार 624वीं जयन्ती मानी गयी है।

## रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।**
**यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)**

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

यूरोपीय देश स्कैंडेनेबिया की लोककथा के अनुसार वृक्ष-पूजा का चित्र

(साभारः द सेक्रेड ट्री- मिसेज जे. एच.फिलपॉट, लंदन, 1897)

असीरिया की लोककथा के अनुसार वृक्ष-पूजा का चित्र

(साभारः द सेक्रेड ट्री- मिसेज जे. एच.फिलपॉट, लंदन, 1897)

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

# बुद्ध-स्मृति पार्क से महावीर मन्दिर का विहंगम दृश्य

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए वीर बहादुर सिंह, महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।